॥ वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज द्वारा रचित

श्री पंडितपूजा जी

अध्यात्म सूर्य – टीका

स्वामी ज्ञानानन्द

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण स्वामी विरचित

श्री पंडितपूजा जी

(अध्यात्म सूर्य – टीका)

टीकाकार
स्वामी ज्ञानानन्द

संपादक
ब्र. बसन्त

प्रकाशक
ब्रह्मानन्द आश्रम
संत तारण तरण मार्ग, पिपरिया (होशंगाबाद) म.प्र.

श्री पंडितपूजा जी ग्रंथ

(अध्यात्म सूर्य – टीका)

टीकाकार – आत्मनिष्ठ साधक पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज

प्रथम संस्करण – १०००, मार्च १९९९

द्वितीय संस्करण – १०००, सितम्बर १९९९ (पर्यूषण पर्व)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य – पंद्रह रूपये मात्र

प्राप्ति स्थल –

१– पं. विजय मोही
मंत्री –ब्रह्मानन्द आश्रम, संत तारण तरण मार्ग,
पिपरिया, जिला – होशंगाबाद (म.प्र.) ४६१ ७७५

२– प्रवीण जैन – मंत्री
श्री तारण तरण अध्यात्म
प्रचार योजना केन्द्र
६१, मंगलवारा, भोपाल – ४६२ ००१ (म.प्र.)

३– पं. राजेन्द्र कुमार जैन, अमरपाटन
मंत्री –महात्मा गोकुलचंद तारण साहित्य
प्रकाशन समिति (जबलपुर) म.प्र.

४– यह ग्रंथ गंजबासौदा, इटारसी, सागर, महोबा
और छिंदवाड़ा से भी प्राप्त कर सकते हैं।

अक्षर संयोजन एवं अभिकल्पन :– एडवांस्ड लाईन,
बी–६५, नानक अपार्टमेंट, कस्तूरबा नगर, भोपाल. फोन: २७४२८६

मुद्रक :– एम.के. ऑफसेट, ए–१२१, कस्तूरबा नगर, भोपाल.
फोन: ५८८५७९, ९८२७०५८८५७

श्री पंडित पूजा भूमिका

भारतीय संस्कृति में पूजा का विशेष महत्व है। पूजा के विधि-विधान, नाम, प्रकार अपनी सामाजिक मान्यता और परम्परा के अनुसार हैं।

सामाजिक संगठन व्यवस्था के लिये कुछ रीति - नीति - विधि विधान अनुशासन आवश्यक है। इसी के अन्तर्गत धार्मिक अनुष्ठान, उपासना पद्धति, पूजा पाठ एक विशेष महत्वपूर्ण कड़ी है। जिसके माध्यम से मनुष्य की भावनाओं को मोड़ा जाता है। दुष्कर्मों से हटाकर सत्कर्मों की ओर लगाया जाता है।

लेकिन जब यह रुढ़िवाद, कट्टरता और मूढ़ता सहित धर्म का जामा पहिन लेता है, तब समाज और देश के लिए घातक बन जाता है, और यही सम्प्रदायवाद कहलाता है। जिससे मनुष्य एक संकीर्ण दायरे में बंध जाता है। उसका बौद्धिक विकास रुक जाता है। यह व्यवहारिक उपासना - पूजा पद्धति धर्म के नाम पर बैर - विरोध -वैमनस्यता - हिंसा को जन्म देती है जिससे उत्थान के बजाय पतन होता है।

ईसाई धर्म में गिरजाघर में जाकर प्रार्थना की जाती है। इस्लाम धर्म में मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ी जाती है, इबादत की जाती है। आर्य संस्कृति हिन्दू धर्म में मन्दिर में जाकर पूजा और पाठ किया जाता है। यहां दो मार्ग हैं (१) भक्ति मार्ग (२) ज्ञान मार्ग।

(१) भक्ति मार्ग – एक परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। जिसके द्वारा पूरे विश्व का संचालन होता है। जिसके अंश रूप में समस्त जीव हैं। जो उसकी इच्छानुसार संसार में परिभ्रमण करते हैं और अन्त में उसी में लय हो जाते हैं। यह परमात्मा का साकार स्वरुप किसी नाम रूप भेष आदि में भक्ति करते हैं।

(२) ज्ञान मार्ग – अपने आत्म स्वरुप की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करता है, जगत अनादि निधन अपनी स्वतंत्रता से परिणमित हो रहा है। इसमें अनन्त जीवात्मा हैं, जो स्वयं में परमात्म स्वरुप हैं। अपने स्वरुप का विस्मरण होने से अनादि - अज्ञान जनित कर्मों का सुख दुःख भोगते संसार में परिभ्रमण करते हैं। अपने स्वरुप का बोध, ज्ञान के जागरण होने पर अपने पुरुषार्थ से परमात्मा बन जाते हैं, जो अपने में परिपूर्ण स्वतंत्र शुद्ध

सिद्ध सादि अनन्त काल तक रहते हैं।

पूजा का शाब्दिक अर्थ - पुजाना - पूरा करना है। जो अपने में कमी है, कोई कामना, चाहना है उसे किसी के माध्यम से पूरा करना है। परमात्मा अपने में पूर्ण आप्त काम है। अपने में कमी है, उसे पूरा करने के लिये भगवान की पूजा स्तुति करते हैं। इसमें जो साकार स्वरुप किसी नाम रूप - भेष में परमात्मा को मानते हैं वह उसकी मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। जो निराकार स्वरुप मानते हैं वह गुणगान प्रार्थना स्तुति करते हैं। सद्ग्रन्थ शास्त्रों के माध्यम से अपने दोषों को दूर कर सद्गुण प्रगट करते हैं।

सोलहवीं शताब्दी अध्यात्मवादी संतों का युग कहलाता है। जिसमें सभी सम्प्रदायों में क्रान्तिकारी संत हुए हैं, जिन्होंने धर्म के नाम पर जो मिथ्या आडम्बर फैल रहा था, उसे दूर किया, समाज को सही मार्ग दर्शन देकर संगठित किया।

इसी क्रम में जैन दर्शन में क्रान्तिकारी वीतरागी संत सद्गुरु श्री जिन तारण तरण मंडलाचार्य हुये, जिन्होंने भगवान महावीर की दिव्य देशना - शुद्ध अध्यात्मवाद का शंखनाद किया। उनकी वीतरागता की साधना और सत्य धर्म, वस्तु स्वरुप को सुनकर जैन - अजैन सभी उनके अनुयायी बन गये।

जब उनके अनुयायी साथियों ने पूछा - कि इस ज्ञान मार्ग शुद्ध अध्यात्मवाद में पूजा का विधि विधान क्या है ? इसके लिये सद्गुरु तारण स्वामी ने यह पंडित पूजा का निरुपण किया, जो तारण पंथ का मूल आधार है।

ज्ञान मार्ग अध्यात्मवाद की साधना पद्धति मात्र ज्ञान ध्यान करना है। इसमें ज्ञानी सद्गुरु और परमात्मा की वाणी जो ग्रंथ शास्त्र जिनवाणी के रूप में विद्यमान है। उसका स्वाध्याय-चिन्तवन-मनन द्वारा अपने सत्स्वरुप शुद्धात्म तत्व की साधना करना, जिनवाणी की विनय भक्ति करना ही पूजा है।

ज्ञान मार्ग के साधक अध्यात्मवादी का लक्ष्य बिन्दु इष्ट कौन होता है, कैसा होता है? किसके आश्रय से वह अपने इष्ट की साधना करता हुआ

मुक्ति मार्ग पर चलता है और स्वयं परमात्मा होता है इसका सुन्दर विवेचन संक्षेप में गूढ़ रहस्य अन्तर शोधन का मार्ग इस पंडित पूजा में बताया है जो सभी मुमक्षु जीवों को अनुकरणीय है।

मंगलाचरण

ध्रुव तत्व शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरुप ऊँ कार।
करता निज अनुभूति युत, वंदन बारम्बार॥

ज्ञानी सम्यग्दृष्टि का, पूजा - विधि विधान।
जैसा जिनवर ने कहा, जिनवाणी प्रमाण॥

सद्गुरु तारण तरण ने, कहा ज्ञान प्रधान।
जो समझेंगे भव्य जन, पावें पद निर्वाण॥

सद्गुरु की भक्ति प्रबल, वीतराग आधार।
आगम से निर्णय किया, किया इसे स्वीकार॥

ज्ञानानन्द स्वभाव ही, इष्ट और हितकार।
अपने ज्ञानोपयोग हित, लिखूं बुद्धि अनुसार॥

ऊँ नमः सिद्धं

- : श्री पंडित पूजाजी :-

प्रश्न- ज्ञान मार्ग के साधक का लक्ष्य और इष्ट क्या है ?

इसके समाधान में सद्गुरु तारण स्वामी गाथा कहते हैं.....

गाथा (१) - (२)

उवंकारस्य ऊर्ध्वस्य, ऊर्ध सद्भाव सास्वतं।
विन्द स्थानेन तिस्टन्ते, न्यानं मयं सास्वतं धुवं ॥१॥
निरु निश्चैनय जानन्ते, सुद्ध तत्व विधीयते।
ममात्मा गुनं सुद्धं, नमस्कारं सास्वतं धुवं॥२॥

अन्वयार्थ - (उवंकारस्य) परमात्म स्वरुप - सिद्ध परमात्मा (ऊर्धस्य) लोक के अग्र भाग में (ऊर्धसद्भाव) अपने उर्धगामी स्वभाव - अशरीरी ध्रुव स्वभाव में (सास्वतं) अजर - अमर - अविनाशी (विंद स्थानेन) परमानन्दमयी निज स्वभाव - सानन्द निर्विकल्प समाधि में विराजमान है। (न्यानं मयं) ज्ञानमयी- ज्ञानमात्र चेतन सत्ता में (शाश्वतं ध्रुवं) निश्चय से अटल - अचल है।

(निरुनिश्चैनय) शुद्ध निश्चय नय से, द्रव्य स्वभाव से (जानन्ते) जानते हैं (सुद्ध तत्व) शुद्धात्म तत्व (विधीयते) परिपूर्ण शुद्ध, सिद्ध होने की विधि है (ममात्मा) मेरा आत्म स्वभाव (गुनं) और गुण भी (सुद्धं) शुद्ध हैं (नमस्कारं) नमस्कार करता हूँ (सास्वतं धुवं) उस शाश्वत ध्रुव सिद्ध स्वरूपी, निज शुद्धात्म तत्व को।

विशेषार्थ - आत्मा ऊँकार मयी पंच परमेष्ठी पदधारी शुद्ध - बुद्ध श्रेष्ठ ज्ञान स्वरुप परमात्मा है। जो जीव अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होकर ऊर्ध्व गमन करते हैं, वे त्रिकाली चैतन्य स्वरुप शाश्वत स्वभाव में लीन होकर अर्थात् स्वभाव का वरण कर निर्विकल्प मोक्ष सुख में सदा विराजते हैं, वे सिद्ध परमात्मा ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव में लीन रहते हैं। अनुपम - अविनाशी पद के धारी सिद्ध परमात्मा के समान ही अत्यन्त महिमावान मेरा भी शुद्ध सत्स्वरुप है।

ज्ञानी जन परम शुद्ध निश्चय से जानते हैं कि मैं शुद्धात्मा सर्व कर्मों से भिन्न हूँ सिद्धों के समान मेरा स्वरुप है। ज्ञानी निज शुद्धात्म तत्व का अनुभव करते हैं जैसे सिद्ध परमात्मा शुद्ध अशरीरी अविकारी निरंजन हैं, वैसा ही मेरा आत्मस्वरुप है। उनके गुणों के समान मेरे गुण सदैव शुद्ध हैं, जो समस्त पर संयोगों से भिन्न अपने में ही चित्प्रकाशमान हो रहा है। ऐसे शाश्वत ध्रुव स्वभाव को मैं नमस्कार करता हूं।

विशाल बुद्धि, माध्यस्थता, सरलता और जितेन्द्रियता इतने गुण जिस आत्मा में हों, वह तत्व पाने के लिये उत्तम पात्र है वही ज्ञानी पंडित कहलाता है।

अनन्त जन्म - मरण करने वाली आत्मा की करुणा ऐसे अविकारी को ही उत्पन्न होती है, और वही कर्मों से मुक्त होने का अभिलाषी कहा जा सकता है। वही पुरुष - यथार्थ - पदार्थ को यथार्थ स्वरुप से समझकर मुक्त होने के पुरुषार्थ में लग जाता है।

जो आत्मायें मुक्त हुई हैं, वे आत्मायें कुछ स्वच्छन्द वर्तन से मुक्त नहीं हुई हैं परन्तु आप्त पुरुष उपदिष्ट मार्ग के प्रबल आलम्बन से मुक्त हुई हैं।

धर्म- यह वस्तु परमतत्व बहुत गुप्त रहा है। यह बाह्य आचरण, बाह्य शोधन, बाह्य ज्ञान से मिलने वाला नहीं है। अपूर्व अंतःशोधन से यह प्राप्त होता है। अपने शुद्धात्म स्वरुप की अनुभूति बोध होना यह अन्तः शोधन कोई बिरले महाभाग्य जीवों को उपलब्ध होता है।

इस जीवन के थोड़े सुख के लिये अनन्त भव के अनन्त दुःखों को बढ़ाना - ज्ञानी बुधजन उचित नहीं मानते इसी जीवन में मुक्त होने का सत्पुरुषार्थ करते हैं।

जैसे सिद्ध भगवन्त किसी के आलम्बन बिना स्वयमेव पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञानानन्द स्वभाव से परिणमन करने वाले दिव्य सामर्थ्य वंत देव हैं। तादृश सभी आत्माओं का स्वभाव भी है। ऐसा ही निरावलम्बी ज्ञान और सुख स्वभाव रूप मैं हूँ, ऐसा लक्ष्य में लेने पर ही जीव का उपयोग अतीन्द्रिय होकर पर्याय में ज्ञान और आनंद खिल जाता है। इस तरह आनन्द का अगाध सागर उसके प्रतीति में ज्ञान में और अनुभूति में आ जाता है।

स्वयं का परम इष्ट निज शुद्धात्म तत्व - सिद्ध स्वरुप ही आराध्य वंदनीय है। इसी की साधना - आराधना से स्वयं सिद्ध हुआ जाता है। इस विधि को जानने वाले ही ज्ञानी पंडित होते हैं। जो पहले सच्चे देव, अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा के स्वरुप का श्रवण, मनन कर लक्ष्य में लेते हैं और ऐसा ही मेरा सत्स्वरुप है। ऐसी अनुभूति युत श्रद्धान, ज्ञान द्वारा ध्रुव शाश्वत स्वरुप को नमस्कार करते हैं उनका नमस्कार ही वास्तव में सही है। इसी से सिद्ध पद प्रगट होता है।

भगवान की वाणी से नहीं, उनके निमित्त से हुये, परलक्षीज्ञान से भी नहीं, परन्तु जो स्वलक्षी भाव श्रुत ज्ञान है उससे आत्मा की अनुभूति होती है। ऐसे भाव श्रुतज्ञान से आत्मा को जाने, या केवल ज्ञान से आत्मा को जाने, ऐसे जानने में अनुभव में अन्तर नहीं है।

स्व-पर प्रकाश का पुन्ज प्रभु तो शुद्ध ही है। पर जो राग से भिन्न होकर उसकी उपासना करे, उसी के लिये वह शुद्ध है। आत्मा अचिंत्य सामर्थ वाला है। सिद्ध के समान ध्रुव तत्व शुद्धात्मा है। उसमें अनन्त गुण हैं और द्रव्य स्वभाव से गुणों से शुद्ध ही है। ऐसा श्रद्धान- ज्ञान और उसकी रुचि हुये बिना, उपयोग पर में से पलटकर स्व में नहीं आ सकता। जो पाप भावों में पड़े हैं उनकी तो बात ही क्या है ? पर पुन्य की रुचि वाले बाह्य त्याग करें तप करें, द्रव्य लिंग धारण करें तो भी जब तक शुभ की रुचि है तब तक उपयोग पर की ओर से पलटकर स्व में नहीं आ सकता। अतः जब अपने सत्स्वरुप का ऐसा बोध जागता है कि मैं स्वयं सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा, परम ब्रम्ह परमात्मा हूँ तभी उपयोग स्वोन्मुखी होकर मुक्ति मार्ग बनता है। उसकी यथार्थ विधि का यही क्रम है।

धर्म क्या है ? अपना इष्ट कौन है ? पूज्य , आराध्य कौन है? यह समझना आवश्यक है -

धर्म - शरीर, वाणी, धन आदि से धर्म नहीं होता, क्योंकि वे तो सभी आत्मा से भिन्न अचेतन पर द्रव्य हैं, उनमें आत्मा का धर्म नहीं है, और मिथ्यात्व, हिंसा, असत्य , चोरी, अब्रम्हचर्य आदि पाप भाव, या दया - दान, पूजा भक्ति आदि पुण्य भाव से भी धर्म नहीं होता क्योंकि वह दोनों विकारी भाव हैं। **आत्मा की निर्विकारी शुद्ध दशा वह ही धर्म है। उसका कर्ता**

आत्मा स्वयं ही है। वह धर्म वीतराग देव, गुरु , शास्त्र आदि कहीं बाहर से नहीं आता, परन्तु निज शुद्ध ज्ञायक आत्मा के ही आश्रय से प्रगट होता है। आत्मा ज्ञान और आनन्द आदि निर्मल गुणों की शाश्वत खान (भंडार) है। सत् - समागम से श्रवण, मनन के द्वारा उसकी यथार्थ पहिचान करने पर आत्मा में से जो अतीन्द्रिय आनन्द युक्त निर्मल अंश प्रगट होता है वह ही धर्म है । अनादि - अनन्त एक रूप चैतन्य मूर्ति भगवान आत्मा वह अंशी है, धर्मी है, और उसके आश्रय से जो निर्मलता प्रगट होती है वह अंश है, धर्म है। ज्ञानी को अंशी (निज - शुद्धात्म तत्व, अखंड, अभेद, अनन्त गुण निधान सत्स्वरुप) का आश्रय होता है, अंश का नहीं। और वेदन अंश का होता है परन्तु उसका अवलंबन नहीं होता, उसे अपने शुद्ध अखंड परम पारिणामिक भाव स्वरुप निज आत्म द्रव्य का ही निरन्तर अवलम्बन वर्तता है, यही उसका इष्ट-आराध्य है। इसी (शुद्धात्म स्वरुप) के ही आधार से धर्म कहो - या शान्ति कहो - या मुक्ति कहो, सब प्रगट होता है। किसी पर- परमात्मा- परावलम्बन से धर्म नहीं होता, पर के आश्रय से पर को इष्ट आराध्य मानने से कभी मुक्ति नहीं होती।

यहां कोई प्रश्न करता है कि जब परमात्मा - परावलम्बन से धर्म या मुक्ति नहीं होती, तो यह सिद्ध स्वरुप - सिद्ध परमात्मा अरिहन्त परमात्मा की बात क्यों करते हो ? देव, गुरु, शास्त्र को क्यों मानते हो ?

समाधान -जगत में सर्वश्रेष्ठ, परमहित रूप, परम मंगल स्वरुप तथा परमशरण रूप ऐसा सिद्ध पद सर्वथा अभिनन्दनीय है। सिद्ध पद की प्राप्ति के उपाय बताने वाले सद्गुरु वीतरागी संत होते हैं, जो स्वयं उस मार्ग पर चलते हैं तथा सिद्ध पद प्राप्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन , सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रत्नत्रय स्वरुप निज शुद्धात्मा है। जिसको अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है, सद्गुरु पालन करते हैं और बताते हैं, शास्त्र (जिनवाणी) में वह लिखा है इसलिये देव, शास्त्र, गुरु के प्रति बहुमान भक्ति भाव आता है।

अरिहन्तादि का स्वरुप वीतराग विज्ञानमय होता है, इसी कारण से अरिहन्त सिद्ध आदि स्तुति योग्य महान हुये हैं। पंचपरमेष्ठी का मूलस्वरुप

तो वीतरागी व विज्ञान मय है। इसका ज्ञान ही परमइष्ट है। शक्ति से तो सभी आत्मायें शुद्ध हैं, परन्तु रागादि विकार अथवा ज्ञान की हीनता की अपेक्षा से जीव संसारी दीन-हीन बना है। अपने ज्ञान में विवेक प्रगट हुआ तो जिसके निमित्त से बात समझ में आई - उन वीतरागी देव, गुरु, शास्त्र का स्मरण कर नमस्कार करते हैं। उनके उपकार नहीं भूले जाते।

देव, गुरु, शास्त्र ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक जीव आत्मा स्वभाव से परमात्मा है। अपने स्वरुप का विस्मरण होने से संसारी बना है। देव, शास्त्र, गुरु हमें अपने स्वरुप का स्मरण कराते हैं। न वह पार लगाते हैं, न परमात्मा बनाते हैं, न भला बुरा करते हैं। हमें अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध कराते हैं क्योंकि ऐसा ही उन्होंने भी अपने अनुभव में लिया - बोध किया। जिससे वह आत्मा से परमात्मा बन गये। वह कहते हैं कि हमारी पूजा भक्ति से तेरा कल्याण मुक्ति नहीं हो सकती। तुझे तेरी महिमा भाषित हो - कि मैं आत्मा, शुद्धात्मा, परमात्मा हूँ - तो हमारी महिमा तो हो ही जाती है।

भगवान सर्वज्ञ के मुखार बिन्द से निकली हुई वीतराग वाणी जिनवाणी को जो हृदयंगम करते हैं उनके भव का अन्त आ जाता है,एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता तो नहीं, परन्तु स्पर्श भी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध होती है। आत्मा मात्र ज्ञायक परमानन्द स्वरुप है। यह भगवान सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि का नाद है। अध्यात्म की ऐसी सूक्ष्म वस्तु इस काल में जिसे अन्तर में रुचकर परिणमित हो जाये, उस जीव के दो चार भव ही होंगे, अधिक नहीं, यह शास्त्र कथित है। इस काल में केवल ज्ञानी, अवधिज्ञानी या - मनः पर्यय ज्ञानी नहीं है तथा वीतरागी संत भी विरले कोई हों, एक मात्र जिनवाणी ही हमें वस्तु स्वरुप सच्चे देव, गुरु धर्म का स्वरुप अपने शुद्धात्म तत्व का बोध कराती है। प्रभु तू स्वयं परमेश्वर है।

पर वस्तु तो दूर है। शरीर ,वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, पैसा तो सब पर ही हैं। यहां तो देव, गुरु, शास्त्र भी पर है, दूर हैं। प्रभु एक समय की पर्याय भी तेरे त्रिकाली ध्रुव स्वभाव से पर है, उस पर दृष्टि देना भी मिथ्यात्व है। ऐसा सत्य वस्तु स्वरुप बताने वालों के प्रति बहुमान आता ही है, इनकी

इसीलिये बात करते हैं। उस सर्वज्ञ स्वरुप - सिद्ध पद को इष्ट मान कर नमन करते हैं।

सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में वस्तु स्वरुप की ऐसी परिपूर्णता उपदिष्ट हुई है कि प्रत्येक आत्मा स्वरुप की अनुभूति से अर्थात् अपने स्वभाव से पूर्ण परमेश्वर परमात्मा है उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। वैसे ही प्रत्येक पुद्गल परमाणु भी अपने स्वभाव से परिपूर्ण अपने में स्वतंत्र है। इस प्रकार चेतन व जड़ प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र व स्वतः ही परिपूर्ण है। कोई भी तत्व को किसी अन्य तत्व के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। ऐसा समझकर अपने परिपूर्ण आत्मा की श्रद्धा व आश्रय करना व पर का आश्रय छोड़ना ही मुक्ति का मार्ग तारण पंथ है। इस बात को शुद्ध निश्चयनय से पंडित जानते हैं क्योंकि ऐसा ही उन्होंने अपने शुद्धात्म स्वरुप का अनुभूतियुत ज्ञान श्रद्धान किया है।

प्रश्न - ज्ञान मार्ग के पथिक ज्ञानी जनों की देवपूजा की विधि क्या है?

इसके समाधान में सद्गुरु तारण स्वामी गाथा कहते हैं .....

गाथा (३)

उवं नमः विंदते जोगी, सिद्धं भवति सास्वतं।
पण्डितो सोपि जानन्ते, देव पूजा विधीयते ॥३॥

अन्वयार्थ - (उवं) परमात्म स्वरुप (नमः) नमस्कार करते हैं (विंदते) अनुभूति करते, उस दशा में रहते (जोगी) साधक - जो ज्ञान योग की साधना करते, ध्यान समाधि लगाते हैं। (सिद्धं) सिद्ध परमात्मा (भवति) हो जाते हैं। (सास्वतं) जो अविनाशी ध्रुव पद है। (पंडितो) ज्ञानी जन सम्यग्दृष्टि ज्ञानी (सोपि) वे भी इसी प्रकार (जानन्ते) जानते हैं (देवपूजा) अपने इष्ट की सिद्धि, स्वयं के देवत्व पद को प्राप्त करना (विधीयते) उसका यह क्रम - विधि - विधान है।

विशेषार्थ - ऊँकार स्वरुप को नमस्कार है जिस निर्विकल्प स्वरुप को साधु योगी जन अनुभवते हैं और निज स्वभाव में लीन होकर शाश्वत सिद्ध पद प्राप्त करते हैं। जो आत्मानुभवी जीव पंडित ज्ञानी हैं वे यह जानते हैं कि अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होना ही सच्ची देव पूजा है।

सिद्ध परमात्मा के समान अपने शुद्ध स्वरुप मय होना, अर्थात् निज चैतन्य भगवान में अपने उपयोग को लगाना ही देव पूजा की सच्ची विधि है।

आत्मा का अपने परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव में हो जाना ही परमात्म स्वरुप देवत्वपना है। जो भव्य जीव पूर्ण शुद्ध दशा को उपलब्ध हो गये - वह परमात्मा देव कहाते हैं, जो सशरीरी होते हैं, वह अरिहंत केवल ज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा कहलाते हैं जो अशरीरी होते हैं वह सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं, ये ही सच्चे देव होते हैं।

मूलतः प्रत्येक जीवात्मा स्वभाव से परमात्म स्वरुप है, पर अपने स्वरुप का विस्मरण होने से अज्ञान जनित मिथ्यात्व के कारण यह शरीर ही मैं हूं - यह शरीरादि मेरे हैं - मैं इन सबका कर्ता हूं इस विपरीत मान्यता के कारण अनादि से संसार की चार गति, चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण कर रहा है, **जो अपने परमात्म स्वरुप को जान लेता है वह पंडित ज्ञानी है।**

जो जीव सत्संग और भेदज्ञान द्वारा अपने सत्स्वरुप को जान लेता है। जिसे निज शुद्धात्मानुभूतियुत तत्व निर्णय हो जाता है वह पंडित ज्ञानी कहलाता है।

पंडित की परिभाषा श्री तारण स्वामी ने श्रावकाचार में निम्नप्रकार की है -

देवं च ज्ञान रूपेन, परमिस्टी च संजुतं।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति स पंडिता॥ ४२॥ श्रावकाचार

देव जो ज्ञान स्वरुपी है और परमेष्ठी पद से संयुक्त है। वैसा ही मैं इस देह में विराजमान हूँ, जो ऐसा जानते हैं वह पंडित हैं।

कर्म अस्ट विनिर्मुक्तं,मुक्ति स्थानेषु तिस्ठिते।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति स पंडिता॥४३॥ श्रावकाचार

जो आठों कर्मों से पूर्ण मुक्त शुद्ध सिद्ध परमात्मा मोक्ष स्थान लोक के अग्रभाग में तिष्टते हैं, वैसा ही मैं इस देह में विराजमान हूँ जो ऐसा जानते हैं - वह पंडित हैं।

दृष्टि का विषय द्रव्य स्वभाव है, उसमें तो अशुद्धता की

उत्पत्ति ही नहीं है।

समकिती को अन्तर शुद्ध स्वरुप की दृष्टि और स्वानुभव होने पर स्वयं के अमृत स्वरुप आनन्द सागर भगवान आत्मा का वेदन वर्तता है।

ज्ञानी को यथार्थ द्रव्य दृष्टि प्रगट हुई है। उसने जाना कि मैं सिद्ध के समान शुद्ध ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ और एक समय की चलने वाली पर्याय असत् नाशवान तथा समस्त जीवादि द्रव्य सब मेरे से भिन्न हैं।

जिसे आत्मा के पूर्ण स्वभाव का अन्तर में विश्वास आया कि मैं ज्ञान - आनन्द आदि अनन्त शक्तियों से भरपूर पदार्थ हूं तभी वह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है।

जीव का विश्वास अनादि से वर्तमान पर्याय में है। उसने अपने ध्रुव स्वभाव को जाना नहीं है। परन्तु जहां यह पर्याय है वहां ही पीछे गहरे इसी के तल में समूची पूर्ण वस्तु निज ध्रुव तत्व शुद्धात्मा विद्यमान है। जो अनन्त अपरिमित शक्तियों का सागर अनन्त चतुष्टय धारी है। उसका जिसे अन्तर में अनुभव में आये और बुद्धिपूर्वक निर्णय विश्वास हो जाये, उसे सम्यग्यदृष्टि ज्ञानी कहा जाता है।

वह यह जानता है कि अभी तक जितने जीव आत्मा - परमात्मा हुए हैं। जिन्होंने सिद्ध पद, देवपना पाया है, वह सब ऐसे ही अपने स्वरुप की अनुभूति युत श्रद्धान - ज्ञानकर अपने स्वरुप की साधना अर्थात् अपने शुद्ध स्वभाव में स्थिर लीन होकर ही अरिहन्त - सिद्ध बने हैं। ज्ञान मार्ग के साधक योगी जनों ने अपने स्वरुप की साधना से ही साधु पद और साधु पद से सिद्ध पद पाया है। किसी बाह्य क्रिया कांड या पर के अवलम्बन से सिद्ध पद या मुक्ति नहीं मिलती।

इस प्रकार पंडित ज्ञानी जन अपने स्वरुप की साधना करते हैं अर्थात् अपने उपयोग को अपने शुद्ध ममल स्वभाव निज शुद्धात्मतत्व में लगाते हैं। उसी में रमते जमते हैं। उसी का ज्ञान - ध्यान आराधना भक्ति करते हैं। यही उनकी देवपूजा है और इसी से सिद्ध परमपद देवत्वपना प्राप्त होता है।

अध्यात्म में सदैव निश्चयनय ही मुख्य है। व्यवहारनय के आश्रय से कभी अंशमात्र भी धर्म नहीं होता, अपितु उसके आश्रय से तो राग द्वेष के

विकल्प ही उपजते हैं। तो शुद्ध निश्चय नय से जिसने अपने सत्स्वरुप को जान लिया है कि सिद्ध के समान केवलज्ञानी अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा के समान मैं भी अनन्त चतुष्टय का धारी परमात्मा हूं। तब वह अपनी वर्तमान पर्याय में जो अशुद्धि है, पूर्व में अज्ञान दशा में जो कर्मों का बंध हो गया है। उनको क्षय करने के लिये अपने परम पारिणामिक भाव ममल स्वभाव ध्रुव तत्व का आश्रय लेता है। अपने देवत्व स्वरुप की साधना - आराधना स्मरण ध्यान कर निज गुणों को प्रगट करता है, इसी से पूर्व कर्म बन्धोदय निर्जरित क्षय होते हैं। यही ज्ञान मार्ग की सच्ची देवपूजा की विधि है। पूर्व में जो ज्ञानी जन सिद्ध मुक्त हुये हैं। वह भी इस साधना से सिद्ध हुये हैं। **अपनी कमी को दूर कर पूर्णता को प्राप्त करना ही सच्ची पूजा है।**

सद्गुरु कहते हैं कि अनेक प्रकार के शुभाशुभ विकल्प करने से कोई कार्यसिद्धि तो नहीं होती। कार्यसिद्धि तो अनन्त आनन्द के सागर ऐसे निज शुद्धात्मा की ओर झुकने उसी में रमने - जमने से होती है। जितना शुभाशुभ विकल्प और क्रियाकांड में लगना होता है, उस ओर बढ़ते हैं, उतने ही स्वानुभव के मार्ग से भ्रष्ट होते जाते हैं, यह तो स्वयं अनुभव की बात है।

भगवान सर्वज्ञ देव जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि आत्मा में शरीर-संसार या रागादि है ही नहीं - सर्वप्रथम ऐसा निर्णय कर आत्मा का अनुभव कर। जीव - लकड़ी का - पत्थर का - लोहे का - अग्नि का - जल का - बिजली के स्वभाव का विश्वास करता है। डाक्टर और दवा की गोली का विश्वास करता है। यद्यपि इससे आत्मा का कोई सम्बंध नहीं है और कर्मोदय जन्य परिणमन में यह कुछ भी टाल फेर नहीं कर सकते, फिर भी जीव उनका विश्वास करता है और सच्चे देव, गुरु, शास्त्र उनकी वाणी पर विश्वास नहीं करता। वह कहते हैं कि तू -स्वयं आत्मा एक ज्ञान शक्ति है, अनन्त शक्तियों से व्याप्त भगवान आत्मा अचिन्त्य शक्तिमय सामर्थ्यवान है। तेरे स्वयं के जागने पर संसार और समस्त कर्मों का विलय हो जाता है। इसका भरोसा करें तो भव भ्रमण से छूट जायें, स्वयं भगवान परमात्मा हो जायें।

पूजा न केवल द्रव्य चढ़ाना है,
पूजा न केवल भक्ति दिखाना है।
पूजा का अर्थ पूज्य में तन्मय हो जाना है,
पूजा का प्रयोजन पूज्य बन जाना है॥

सबकी शरण में है मरण, निज आत्मा तारण तरण।
शान्ति की सरिता प्रवाहित, आज लो उसकी शरण॥
ज्ञान की ज्योति जलाकर, ज्ञानमय तन्मय करो।
ज्ञान ही भगवान है, करो उसका अनुसरण॥

इस प्रकार ज्ञानी अपने परमात्म स्वरुप का आश्रय, उसी की साधना - आराधना, ज्ञान, ध्यान करता है, जिससे सिद्ध पद मुक्ति होती है। यही अध्यात्म ज्ञान मार्ग में पूजा का विधि विधान है।

प्रश्न - जिसकी बाहर में कोई क्रिया रूप दिखाई न दे - ऐसी पूजा का महत्व क्या है, और इस पूजा से लाभ क्या है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं.....

गाथा (४)

ह्रियंकारं न्यान उत्पन्नं, उवंकारं च विन्दते।
अरहं सर्वन्य उक्तं च, अचष्य दरसन दिस्टते॥ ४॥

अन्वयार्थ - (ह्रियंकारं) तीर्थंकर, सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा का (न्यान) ज्ञान (उत्पन्नं) पैदा होता है , (उवंकारं) पंच परमेष्ठी मयी सिद्ध परमात्म स्वरुप और (विन्दते) अनुभव करने, अनुभूति होने से (अरहं-सर्वज्ञ) अरहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने (उक्तं) कहा है (च) और (अचष्य दरसन) अन्तर चक्षु दर्शन, दिव्य दृष्टि (दिस्टते) देखते हैं।

विशेषार्थ - वीतरागी अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है कि निज शुद्धात्म स्वरुप शुद्ध चिदानन्दमयी निर्विकार है। जो जीव मन, वचन, काय और कर्म आदि विकारों से रहित निज स्वभाव को मन और इन्द्रियों से दूर होकर अन्तर चक्षु द्रव्य दृष्टि से देखते हैं, तथा ओंकारमयी शुद्ध समयसार निज शुद्धात्म स्वरुप का अनुभवन करते हैं, उनको अपने परमात्म स्वरुप का महिमामयी परमज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

परमतत्व का ज्ञान होना महान सौभाग्य की बात है, जिसे अपने परमात्म स्वरुप का संशय, विभ्रम विमोह रहित ज्ञान हो जाता है वही ज्ञानी है।

(१) जीव अपने स्वरुप को भूल गया है, इस अज्ञान का नाश ज्ञान मिलने से होता है।

(२) ज्ञान की प्राप्ति ज्ञानी सद्गुरुओं के सत्संग से होती है, इसके लिये लोक मूढ़ता समाज सम्प्रदाय के बंधनों को तोड़ना आवश्यक है।

(३) जो ज्ञान प्राप्ति की इच्छा करता है उसे सद्गुरु - जिनवाणी के अनुसार चलना चाहिये। अपनी इच्छा से चलता हुआ जीव अनादि काल से भटक रहा है।

(४) दृढ़ संकल्प शक्ति - ज्ञान प्राप्ति की तीव्र लगन और मुमुक्षुता होना आवश्यक है। अध्यात्म दृष्टि - भेदज्ञान का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।

(५) निर्मल अन्तःकरण से आत्मा का विचार, सामायिक, ध्यान करना।

(६) दूसरा कुछ न कर मात्र निज शुद्धात्म स्वरुप का चिन्तन मनन करते रहना।

इस गुप्त तत्व का जो आराधन करता है वह प्रत्यक्ष अमृत प्राप्त करके अभय हो जाता है।

''आत्मा ज्ञान स्वभावी प्रभु है'' ऐसा जिसके ज्ञान में आया, वह ज्ञानी जीव जीवन में स्थिर हो जाता है, यह प्रत्याख्यान है। जहाँ ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हुआ, वहां विशेष आनन्द की धारा बहती है।

जिसे भगवान की वाणी में प्ररुपित तत्व ह्रदयंगम हुआ, उसे यह शंका नहीं रहती है कि कौन - कैसा क्या है। उसे यह निशंक निर्णय हो जाता है कि मैं भगवान हूँ - भगवान स्वरुप हूँ व अल्पकाल में परमात्मा होने वाला हूँ। ऐसा दृढ़ निर्णय हो जाता है।

ज्ञानी की दृष्टि तो संसार से छूटने की है। अतः वह राग रहित निवृत स्वभाव की मुख्य भावना व आदर में सावधानी से प्रवृति करता है। अशरीरी सिद्ध परमात्मा के समान मैं भी अशरीरी पूर्ण शुद्ध परमात्मा हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय श्रद्धान परम तत्व का ज्ञान है। ज्ञानी अंतर चक्षु द्रव्य दृष्टि से हमेशा स्वरुप को देखता है।

ज्ञानी को पर द्रव्य की क्रिया करने का विचार तो होता ही नहीं है बल्कि उसे अपनी पर्याय में अशुभ भाव को शुभ करने का अभिप्राय भी नहीं रहता। आत्मा ज्ञायक रूप से रहे एक यही अभिप्राय रहता है, ऐसे निर्णय

बिना जो कोई और उठा पटक करे, उसमें मोक्ष साधन नहीं होता।

प्रथम तो सत्य समझने की जिज्ञासा होनी चाहिए, अनादि से भूल होती आ रही है परन्तु सच्ची बात समझने का प्रसंग मिले तो वह भूल मिटे, जो भूल को भूल ही न माने, तो वह भूल कभी नहीं मिटती।

मूल बात तो आत्मा की दृष्टि है। द्रव्यानुयोग - शुद्ध निश्चय नय के समझे बिना भव का अभाव नहीं होता। सत् समागम द्वारा वस्तु स्वरुप समझकर आत्मा चिदानन्द स्वरुप है इसकी प्रतीति कर राग रहित होओ, अभेद स्वभाव का लक्ष्य करो, तभी धर्म और मुक्ति होगी।

अज्ञानी बाह्य क्रिया में धर्म मानता है। पर के आलम्बन से अपना भला होना मानता है यही संसार का कारण है। जो व्यवहार में ही संलग्न है, जिनका अभी गृहीत मिथ्यात्व ही नहीं छूटा, उनको आत्म स्वरुप की प्रतीति होना ही दुर्लभ है। आत्मा के अनुभव बिना संसार का नाश नहीं होता। जिसे व्यवहार में पूजा, पाठ, दया, दान, व्रत, संयम करने के राग का रस है, इनसे धर्म या मुक्ति होना मानता है। वह मिथ्यादृष्टि है।

आत्मा का हित तो मोक्ष ही है। संसार अवस्था में दुःख है, यहां दुःख चाहे अल्प हो - या अधिक किन्तु सुख बिल्कुल भी नहीं है चारों गतियों में दुःख है। आकुलता ही दुःख है। स्वर्ग की इच्छा वश पुन्य करे अथवा नरक तिर्यंच के दुःखों के भय से पाप न करे, तो उससे कल्याण नहीं है। उसमें तो आकुलता है शान्ति नहीं है। आकुलता सो दुःख है व निराकुलता सो सुख है- ऐसा निर्णय किये बिना मोक्ष मार्ग में प्रवेश नहीं हो सकता है।

भगवान का भजन करो, पूजा-पाठ करो, कंचन-कामिनी और कुटुम्ब का त्याग करो तो धर्म होगा, अज्ञानी ऐसा कहते हैं और ऐसा ही मानते हैं यही मिथ्यात्व है।

आत्मा तो सबसे पृथक राग रहित है। ऐसे आत्मा के भानपूर्वक राग छूटे तो ही कंचन-कामिनी व कुटुम्ब रूपी निमित्त छूटे हुये कहलाते हैं। स्वरुप में लीन होना सो चारित्र है। बाह्य त्याग चारित्र नहीं है। मैं ज्ञायक हूँ ऐसे स्वभाव की श्रद्धा ज्ञान पूर्वक का जितना वीतराग भाव हुआ उतना संवर धर्म है।

जिस धर्मात्मा ने निज शुद्धात्म द्रव्य को स्वीकार करके परिणति को स्व अभिमुख किया, वह प्रतिक्षण मुक्ति की ओर गतिशील है वह मोक्षपुरी का प्रवासी होगा।

प्रश्न - यह बात समझ में नहीं आती कि एक ओर तो यह कहते हैं- मैं शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, टंकोत्कीर्ण अप्पा ममल स्वभावी हूँ और दूसरी और यह कहते हैं पर्याय में अशुद्धि है - गुण प्रगट करना है, शरीरादि कर्मबन्ध है, इसका प्रयोजन क्या है ?

समाधान - वीतरागी - ज्ञानी - सद्गुरुओं तथा जैन दर्शन की यही विशेषता है कि वह वस्तु स्वरुप को अनेकान्त से प्रतिपादित करते हैं क्योंकि एकान्त पक्ष मिथ्यात्व है। वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है। इन दोनों में से यदि एक को भी न माना जाये तो वस्तु नहीं हो सकती। सत् का लक्षण अर्थ क्रिया है।

'' उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्''। पर्याय निरपेक्ष अकेला द्रव्य अर्थ क्रिया नहीं कर सकता, और न द्रव्य निरपेक्ष पर्याय ही कर सकती, किन्तु एक वस्तु होने पर भी उनमें परस्पर में स्वभाव - नाम - संख्या आदि की अपेक्षा भेद भी है। जैसे -

स्वभाव - द्रव्य अनादि अनन्त है। एक स्वभाव परिणाम वाला है। पर्याय सादि शान्त अनेक स्वभाव परिणाम वाली है।

नाम - द्रव्य की संज्ञा द्रव्य है। पर्याय की संज्ञा पर्याय है।

संख्या - द्रव्य की संख्या एक है। पर्याय की संख्या अनेक है।

कार्य - द्रव्य का कार्य एकत्व का बोध कराना है। पर्याय का कार्य अनेकत्व का बोध कराना है।

काल - द्रव्य त्रिकाली ध्रुव होता है। पर्याय वर्तमान काल वाली एक समय की होती है।

लक्षण - द्रव्य का लक्षण सत अविनाशी है। पर्याय क्षणवर्त्ती - नाशवान है।

इस तरह स्वभाव - संख्या - नाम - कार्य - लक्षण आदि से भेद होने से द्रव्य और पर्याय भिन्न है किन्तु वस्तु रूप से एक ही है यह अनेकांत है। द्रव्य स्वभाव का आश्रय करने से पर्याय में शुद्धि आती है, कर्म क्षय होते हैं, पर का पर्याय का आश्रय करने से कर्म बंध और पर्याय में अशुद्धि होती है।

वर्तमान में पूर्व अज्ञान जनित अशुद्ध पर्याय चल रही है शरीरादि कर्मबंध है। इनसे छूटने, मुक्त होने पर्याय की शुद्धि के लिये ध्रुव स्वभाव का लक्ष्य, उसका ज्ञान श्रद्धान और निरंतर ममल स्वभाव में रहने की साधना, अभ्यास करना ही पूर्ण शुद्ध मुक्त - परमात्मा होने का मार्ग है। इसीलिये द्रव्य स्वभाव का आश्रय लक्ष्य ''मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ''ज्ञानी सम्यदृष्टि साधक का पूरा जोर इस पर रहता है। अगर वह इससे स्खलित विचलित होता है तो अभी अज्ञानी है। **ज्ञानमार्ग संकल्प शक्ति, दृढ़ता और पुरुषार्थ का मार्ग है तभी महावीर बन सकता है।**

प्रश्न - इन सब बातों को समझने - ज्ञानी सम्यग्दृष्टि होने के लिए करना क्या पड़ता है ?

समाधान - इसके लिये सद्गुरु तारण स्वामी का विचारमत का पहला ग्रन्थ श्री मालारोहण जी देखें, उसमें सम्यग्दर्शन - ज्ञान आदि की पूरी व्याख्या की गई है।

ज्ञान मार्ग तो अलौकिक है। लोग निज कल्पना से जैसा मानते हैं वैसा यह मार्ग नहीं है। आंख में किरकिरी - कचरा जरा भी सहन नहीं होता, इसी प्रकार सच्चे ज्ञान मार्ग में तिल भर भी संधि नहीं चलती, आत्मा में भाव बंधन ही न हो तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानानन्द स्वभाव मे स्थिर होकर विकार का नाश किसलिए करता है ? अतः पर्याय में बंधन है और निमित्त - नैमित्तिक सम्बंध है। इस बात को ज्ञानी सम्यग्दृष्टि - अच्छी तरह जानता है।

इसीलिये अपने देवत्व पद को प्रगट करने के लिये अपने शुद्ध स्वभाव की साधना, ज्ञान, ध्यान करता है। इससे परम ज्ञान को उपलब्ध होकर मुक्ति पाता है यही ज्ञान मार्ग की पूजा की विशेषता महत्व है। यहां बाह्य क्रिया या पर का अवलम्बन नहीं है। ज्ञानी सद्गुरु परमात्मा की वाणी के आधार से अपने अनुभव प्रमाण चलता है।

प्रश्न - ज्ञानी पंडित - जिनवाणी की पूजा कैसे करता है ,उसका क्या विधान है ?

इसका समाधान - सद्गुरु अगली गाथा में कहते हैं.....

गाथा (५)

मति श्रुतस्य संपूरनं, न्यानं पंच मयं धुवं।
पंडितो सोपि जानन्ति, न्यानं शास्त्र स पूजते ॥ ५॥

अन्वयार्थ - (मति) मतिज्ञान (श्रुतस्य) श्रुतज्ञान को (संपूरनं) सम्पूर्ण, पूरा उघाड़ होना, परिपूर्ण करना, शुद्ध हो जाना (न्यानं पंचमयं) पंच ज्ञान - मति - श्रुत - अवधि - मनः पर्यय केवल ज्ञान, (पंडितो) ज्ञानीजन (सोपि) वह भी - यह सब (जानन्ति) जानते हैं। (न्यानं शास्त्र) ज्ञानमयी शास्त्र जिनवाणी (स) इस तरह (पूजते) पूजा करते हैं।

विशेषार्थ . सम्यक्मति और श्रुत ज्ञान के बल से ज्ञानी अपने ध्रुव स्वभाव को देखते हैं। जो पंचम केवल ज्ञानमयी अपना ही अविनाशी शुद्ध स्वरुप है। ज्ञानी यह जानते हैं कि संपूर्ण ज्ञानमयी निज शुद्धात्मा है। इसलिये हमेशा निज स्वरुप का स्मरण रखते और स्वयं ज्ञान स्वरुप का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार ज्ञानी ज्ञान मयी शास्त्र (जिनवाणी) की सच्ची पूजा करते हैं। **शब्द ब्रम्ह को बताने वाला शब्द ब्रह्म है - अक्षर अपना अक्षय स्वभाव है। निगोदिया को अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान (चैतन्य) का प्रगटपना होता है। केवल ज्ञान पूर्ण अक्षय स्वभाव है। ज्ञान की ही सारी महिमा है। कुज्ञान रूप पूरा संसार चल रहा है। सम्यग्ज्ञान मुक्ति परमशान्ति - परमानन्द को देने वाला है।**

ज्ञान का बोध कराने वाली यह वाणी होती है। अगर वाणी न हो तो परमार्थ को समझा जा सकता नहीं। भगवान महावीर को प्रत्यक्ष जब केवल ज्ञान हो गया और छियासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी तो धर्म की प्रभावना नहीं हुई , सत्य वस्तु स्वरुप को लोग नहीं समझ सके, जब दिव्य ध्वनि प्रगट हुई, वाणी खिरी तो जीवों ने धर्म का स्वरुप समझ और तद्रुप आचरण कर मुक्ति मार्ग पर चले।

यह वाणी जिनवाणी बाह्य निमित्त है। अन्तर में अपने ज्ञान स्वभाव का प्रगटपना सुबुद्धि का जागरण सम्यग्मति - श्रुतज्ञान का होना ही निश्चय जिनवाणी है। ज्ञानी पंडित को निश्चय व्यवहार का

यथार्थ ज्ञान है। शुद्ध निश्चयनय द्वारा अपने पंच ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करके केवल ज्ञान प्रगट करना ही ज्ञान मयी जिनवाणी की सच्ची पूजा है।

वीतराग वाणी रूपी समुद्र मंथन से जिसे शुद्ध चिद्रूप रत्न प्रगट हुआ है वह मुमुक्षु चैतन्य प्राप्ति के परम उल्लास में कहता है कि अब मुझे चैतन्य सिवाय कोई कार्य नहीं है, अन्य कोई वाच्य नहीं है, अन्य कोई ध्येय नहीं है, अन्य कोई श्रवण योग्य नहीं है, अन्य कुछ भी प्राप्त करने योग्य नहीं है, अन्य कुछ श्रेय नहीं है।

ज्ञानी को यथार्थ दृष्टि प्रगट हुई है। वह अन्तर स्वरुप स्थिरता का पुरुषार्थ करता है। परन्तु जब तक अपूर्ण दशा है पुरुषार्थ मंद है। पूर्ण रूप से शुद्ध स्वरुप में स्थिर नहीं होता, तब तक ज्ञान ध्यान की साधना करता है। जिनवाणी का स्वाध्याय मनन करता है। अपने ध्रुव तत्व का ध्यान करता है। यही पंडित ज्ञानी की शास्त्र पूजा है।

जिसकी तत्व की दृष्टि हुई है, उसी को सम्यग्ज्ञान होता है।

जिसने आत्मा को शरीरादि व रागादि से भिन्न जाना है। उसे यह जगत जो धूल का ढेर है, जरा भी प्रभावित नहीं कर सकता - वह अपने चैतन्य स्वरुप निज की सत्ता शक्ति से जरा भी विचलित नहीं होता। जिसे बाहर में कुछ भी नहीं चाहिए, संसारी कोई कामना वासना नहीं है। वह पर की पूजा भक्ति किसलिये करेगा।

यथार्थ समझने वाले को वीतराग देव, गुरु, शास्त्र के प्रति भक्ति का प्रशस्त राग आता है। वह उनके गुणों का स्मरण करता है। उसका चित्त भक्ति भाव से उल्लसित हो जाता है। अन्तरंग में वीतराग स्वरुप निज शुद्धात्मा का लक्ष्य होता है। मेरे में ऐसे गुण कब प्रगट होवें, मैं भी ऐसे निर्विकल्प निजानन्द - पूर्ण परमानन्द में कब होऊँ, इस भावना से सच्चे देव, गुरु की वाणी - जिनवाणी के प्रति भक्ति प्रभावना आदि का भाव उल्लसित होता है। तथापि वे यह जानते हैं कि यह राग है धर्म नहीं है। अन्तर शुद्ध चिदानन्द स्वरुप को प्रगट किये बिना जन्ममरण टलने वाला नहीं है।

अडोल दिगम्बर वृति के धारक वीतरागी संत वन में रहने वाले और चिदानन्द स्वरुप आत्मा में डोलने वाले मुनिवर आत्मा के अमृत कुंड में मग्न

होकर छठे - सातवें गुण स्थान में झूलते हैं। वे वैराग्य की बारह भावना भाते हुये, वस्तु स्वरुप का चिन्तवन करते हैं। ऐसी वैराग्य रस सहित वीतराग वाणी को भाने से किस भव्य को आनन्द स्फुरित न होगा। सभी भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग के प्रति उत्साह जाग्रत होता ही है।

यथार्थ दृष्टि होने के पश्चात भी ज्ञानी देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति वगैरह के शुभ भाव में संयुक्त होता है। परन्तु वह ऐसा नहीं मानता कि इससे धर्म होगा।सम्यग्दर्शन होने के बाद स्थिरता में विशेष वृद्धि होने पर उसे वृतादि के परिणाम आते हैं। परन्तु वह उससे भी धर्म नहीं मानता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल शुद्ध पर्याय जितने - जितने अंश में प्रगट होती है वह उसे ही धर्म मानता है। दया - दान - पूजा भक्ति वगैरह के शुभ परिणाम तो विकारी भाव हैं उनसे पुण्य बंध होता है लेकिन धर्म नहीं होता। ज्ञानी को देव - गुरु - शास्त्र की भक्ति - पूजा - प्रभावना वगैरह के ऐसे शुभ भाव होते हैं कि वह उसमें तन्मय होकर नृत्य करने लगता है। वैसे भाव अज्ञानी को होते ही नहीं है। जिनवाणी का स्वाध्याय कर अपने ज्ञान स्वरुप को प्रगट करना हमेशा समता शान्ति में ज्ञायक भाव में रहना, केवल ज्ञान, ध्रुव स्वभाव की ओर दृष्टि रहना ही शास्त्र पूजा का विधान है।

प्रश्न - ज्ञानी की दृष्टि में सच्चे देव, गुरु, शास्त्र, धर्म कौन हैं ?

इसका समाधान सद्गुरु आगे गाथा में कहते है.....

गाथा (६)

उवं ह्रियं श्रियं कारं, दर्सनं च न्यानं धुवं।
देवं गुरं श्रुतं चरनं, धर्म सद्भाव सास्वतं ॥ ६॥

अन्वयार्थ- (उवं) ओंकार, ब्रम्ह स्वरुप (ह्रियं) अरिहंत सर्वज्ञ स्वरुप (श्रियंकार) मोक्ष लक्ष्मी, शुद्ध मुक्त स्वरुप (दर्सन) दर्शन(च) और (न्यानं) ज्ञानमयी (धुवं) ध्रुव है (देवं) देव है (गुरुं) गुरु है (श्रुतं) शास्त्र है (चरनं) चारित्र है।(धर्म) धर्म(सद्भाव) निज स्वभाव (सास्वतं) अजर, अमर, अविनाशी।

विशेषार्थ - निज आत्मा ऊँकार मयी शुद्ध स्वरुपी, ह्रियंकार अर्थात परिपूर्ण ज्ञान स्वरुप और श्रियंकार मयी शुद्ध भाव से अलंकृत सम्यग्दर्शन

ज्ञान, चारित्रमयी ध्रुव परमात्मा स्वयं है। स्वभाव से निर्मल चैतन्य स्वरुप अजर - अमर - अविनाशी चिद्रूप धाम है।

निज शुद्धात्मा का यही त्रिकाल शाश्वत ध्रुव शुद्ध स्वभाव ही सच्चा देव, गुरु, शास्त्र और धर्म है।

अध्यात्मवादी, ज्ञान मार्ग के पथिक निश्चय अर्थात् अपने सत्स्वरुप श्रद्धान में शुद्धात्मा को ही सच्चा देव मानते हैं। निज अन्तरात्मा को सच्चा गुरु मानते हैं। सुबुद्धि के जागरण (सुमति सुश्रुत ज्ञान) को ही जिनवाणी (शास्त्र) मानते हैं और अपना शुद्ध चैतन्य स्वभाव ही धर्म है।

सिद्धान्ततः आत्मा ही (चैतन्य स्वरुप ही) देव होता है, वही गुरु होता है, वही शास्त्र और वही धर्म होता है। जड़ में चेतनता न होने से देवत्व-पने का अभाव है।

व्यवहार में जो आत्मा उस स्थिति को उपलब्ध पूर्णता को प्राप्त हो गये, उन्हें देव कहते हैं। जो वीतरागी निर्ग्रन्थ संत साधु हैं उन्हें गुरु कहते हैं, ज्ञान प्राप्त कराने वाली वाणी को शास्त्र कहते हैं और मूलतः निज स्वभाव ही धर्म है। धर्म के नाम पर शुभाचरण रूप पुण्य को धर्म मानना ही अज्ञान-मिथ्यात्व है।

पंडित ज्ञानी जब अनुभव करता है तब '' सिद्ध समान'' ही आत्मा का अनुभव करता है। निज स्वभाव में स्थिर होता है तभी आत्मतत्व की अनुभूति होती है। अरिहन्त सिद्धों आदि को जैसा अनुभव होता है वैसा धर्मी जान लेता है। **''अनुभव पूज्य है''। स्वयं शुद्ध आनन्द कन्द सच्चिदानन्द भगवान आत्मा है। ऐसी श्रद्धा सहित अनुभव पूज्य है वही परम है - वही धर्म है - वही जगत का सार है वही भव से उद्धार करता है।**

जिसके सच्ची श्रद्धा प्रगट होती है, उसका सम्पूर्ण अन्तरंग ही बदल जाता है। अनादि अज्ञान - अंधकार टलता है। अन्तर की ज्योति जल उठती है। स्वयं गुरु और देव होने वाला है।

सर्वज्ञ देव ने एक समय में तीन काल व तीन लोक जाने हैं। वैसा ही मेरा भी जानने का ही स्वभाव है। जो होनी है वह बदल नहीं सकती पर जो होना है उसका मैं तो मात्र जानने वाला हूँ। मैं पर की पर्याय को भी बदलने

वाला नहीं, धर्मी का निज स्वभाव सन्मुख रहते हुए, ऐसा निश्चय होता है कि जो नहीं होना है, वैसा कभी नहीं होने वाला है। मैं कहीं भी फेर बदल करने वाला नहीं हूँ।

अन्तर में जिन स्वरुपी भगवान आत्मा वीतराग मूर्ति है। सभी जीव अन्तर में तो जिन स्वरुप हैं, पर्याय में अन्तर है, परन्तु वस्तु में अन्तर नहीं है। आत्मा तो स्वयं ही जिन स्वरूप है। वीतराग चैतन्य मूर्ति अखन्डानन्द नाथ प्रभु है। उसकी दृष्टि पूर्वक जिनकी राग और विकल्प की दृष्टि छूट गई हो, वही पंडित ज्ञानी हैं।

आतम ही है देव निरंजन, आतम ही सद्गुरु भाई।
आतम शास्त्र धर्म आतम ही, तीर्थ आत्म ही सुखदाई॥
आत्म मनन ही है रत्नत्रय, पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव शास्त्र सद्गुरुवर, धर्म तीर्थ को सतत् प्रणाम॥

ज्ञानी की दृष्टि में अपना आत्मा ही देव, गुरु, शास्त्र और धर्म होता है। वह इसी की साधना - आराधना कर स्वयं देव हो जाता है।

प्रश्न - जब आत्मा ही देव गुरु, शास्त्र, धर्म है, फिर ज्ञानी को कुछ करने होने की बात ही नहीं है। तब वह पूजा किसकी और क्यों करता है ?

इसके समाधान में सदगुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (७)

वीर्जं अंकुरनं सुद्धं, त्रिलोकं लोकितं धुवं।
रत्नत्रयं मयं सुद्धं, पंडितो गुण पूजते॥ ७॥

अन्वयार्थ - (वीर्जं) पुरुषार्थ (अंकुरनं) अंकुरित हुआ - प्रगट हुआ (सुद्धं) शुद्ध(त्रिलोकं) तीन लोक को (लोकितं) देखने वाला (धुवं) ध्रुव स्वभाव, केवल ज्ञान मयी, (रत्नत्रयं) रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र (मयं) मयी(सुद्धं) शुद्ध है (पंडितो) पंडित, ज्ञानीजन (गुण) ऐसे गुणों को (पूजते) पूजते हैं।

विशेषार्थ - तीन लोक, तीन काल के समस्त द्रव्य तथा उनकी त्रिकालवर्ती पर्याय केवल ज्ञान की एक समय की पर्याय में झलकती है। जो

रत्नत्रय-मयी अर्थात् परमसुख, परमशान्ति, परमानन्द का भंडार ध्रुव स्वभावी, अनन्त गुणों का निधान आत्मा अपना ही शुद्ध स्वरुप है। जब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान द्वारा ऐसा अपने महिमामयी गुण प्रगट करता है , इसलिये पंडितजन गुणों के पुजारी होते हैं तथा चैतन्य गुणों की पूजा करते हैं। इसी बात को तत्वार्थ सूत्र के मंगलाचरण में कहा है .....

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भू भृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां,वंदे तद् गुण लब्धये ॥ तत्वार्थ सूत्र ॥

मोक्ष मार्ग के प्रवर्त्तक, कर्म रुपी पर्वतों के भेदक अर्थात् नष्ट करने वाले तथा विश्व के (समस्त) तत्वों को जानने वाले (आप्त) केवल ज्ञानी परमात्मा को उनके गुणों की प्राप्ति के हेतु मैं प्रणाम करता हूँ वन्दना करता हूँ।

यहां गुणों से पहचान करके परमात्मा को नमस्कार किया है। अर्थात् परमात्मा विश्व के समस्त तत्वों के ज्ञाता हैं। मोक्ष मार्ग के नेता हैं और उन्होंने सर्व विकारों (दोषों) का नाश किया है, इस प्रकार परमात्मा के गुणों का स्वरुप बतलाकर गुणों को पहिचान कर ऐसे ही गुणों का धारी मैं आत्मा हूँ, उन गुणों की प्राप्ति हेतु वन्दना करता हूँ।

यदि जीव को वस्तु के यथार्थ स्वरुप सम्बधी मिथ्या मान्यता न हो तो ज्ञान में भूल न हो, जहां मान्यता सच्ची होती है, वहां ज्ञान भी सच्चा होता है। सच्ची मान्यता और सच्चे ज्ञान पूर्वक होने वाली सच्ची प्रवृत्ति द्वारा ही जीव दुख से मुक्त हो सकता है।

अनादि से जीव को अपने सत्स्वरुप का विस्मरण होने से यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि बना संसार में परिभ्रमण कर रहा है। अपने को नर नारकादिक पर्यायधारी ही मान रहा है। जब भेदज्ञान सम्यग्दर्शन द्वारा यह भूल दूर होती है और अपने सत्स्वरुप का बोध होता है तब ही जीव का सत्पुरुषार्थ जाग्रत होता है कि मैं स्वयं अनन्तगुण निधान, अनन्त चतुष्टय का धारी सर्वज्ञ स्वभावी परमात्मा हूँ तभी पूर्व कर्म बन्धोदय से आवृत अपने गुणों को प्रगट करने का प्रयास पुरुषार्थ करता है। यही साधना - आराधना उसकी पूजा भक्ति है। पर यह पूजा भक्ति किसी पर परमात्मा की नहीं, अपने ही परमात्म स्वरुप की होती है और इससे

स्वयं परमात्मा हो जाता है।

निज परमात्म तत्व के सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, अनुष्ठान, रूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक कल्याणार्थ परम निरपेक्ष होने से मोक्ष मार्ग है और यह शुद्ध रत्नत्रय का फल निज शुद्धात्मा की प्राप्ति है।

जिस पुरुष के मुक्ति को प्राप्त करने वाला सम्यक्त्व है और उस सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया, वह पुरुष धन्य है, वही कृतार्थ है, वीर शूरवीर है, वही पंडित है, वही मनुष्य है।

मानुष तो विवेकवान, नहीं तो पशु के समान।

सम्यक्त्व की भावना, तत्व निर्णय से गृहस्थ को गृह कार्य सम्बन्धी आकुलता, क्षोभ दुःख मिट जाता है। कार्य के बिगड़ने सुधरने में वस्तु स्वरुप का विचार आता है तब दुःख मिट जाता है। सम्यग्दृष्टि के ऐसा विचार होता है कि सर्वज्ञ ने जैसा वस्तु स्वरुप जाना है वैसा निरन्तर परिणमित हो रहा है और वैसा ही होता है। इसमें इष्ट अनिष्ट मानकर सुखी - दुःखी होना व्यर्थ है। ऐसे विचार से दुःख मिटता है यह प्रत्यक्ष - अनुभव गोचर है।

सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव ने जिस आत्मा को ध्रुव कहा है उसका जो जीव अवलम्बन लेता है उसे उस ध्रुव स्वभाव में से शुद्धता प्रगट होती है। जब यह आत्मा स्वयं राग से भिन्न होकर अपने में एकाग्र होता है तब केवल ज्ञान को उत्पन्न करने वाली ज्ञान ज्योति उदित होती है। स्वरुप में एकाग्र होते ही अन्तर मुहुर्त में केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और अन्तर मुहुर्त में देह छूटते ही सिद्ध हो जाते हैं।

अपने गुणों की पूर्णता प्रगट करना ही सच्ची पूजा है, चैतन्य गुणों का पुजारी स्वयं भगवान बनता है। जड़ पर्यायादि का पुजारी दास बनता है।

त्रिकाली ध्रुव आत्म द्रव्य को पकड़ने पर ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता है। उसे पकड़ने पर ही सम्यक् चारित्र होता है उसे पकड़ने पर ही केवल ज्ञान होता है।

जिन शासन के दो भेद हैं। द्रव्य और भाव - इन दोनों में समस्त जिन शासन समाविष्ट हो जाता है। ऐसा विधान जिनवाणी में है, यही समयसार में कहा है -

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्ध पुट्ठं अणण्णमविशेसं।
अपदेस सन्त मज्झं, पस्सदि जिण सासणं सव्वं ॥ १५॥

जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष,नियत और असंयुक्त देखता (अनुभवता) है, वह सर्व जिन शासन को देखता (अनुभवता) है, जो जिन शासन बाह्य - द्रव्य श्रुत तथा आभ्यंतर ज्ञान रूप भावश्रुत वाला है।

सम्यग्दृष्टि जीव (द्रव्य दृष्टि से) अपने आत्मा को परिपूर्ण व शुद्ध मानता है, तथा उसे ही (पर्याय दृष्टि से) सर्वस्व रूप से उपादेय जानता है। ऐसा सम्यक् दृष्टिकोण ही समस्त द्रव्य श्रुत का केन्द्र स्थान है। उसे इस प्रकार वह स्यात् पद से समीचीन समझता है अर्थात् ग्रहण करता है।

सम्यक् दृष्टि को अपने अनन्त चतुष्टय मण्डित शुद्धात्मा का जो अतीन्द्रिय सहज प्रत्यक्ष स्वानुभव वर्तता है वही भाव श्रुतज्ञान है। उसने इस ही अनुभव ज्ञान की जाति से पूर्ण ज्ञान की जाति को पहचाना है, अर्थात् उसको केवल ज्ञान रूप स्वभाव के अवलम्बन से भावश्रुत ज्ञान प्रस्फुटित हुआ है।

ज्ञानी धर्मात्मा के ज्ञान में समीचीनता वर्तती है। उनमें सद्धर्मतीर्थ सम्बन्धित प्रत्येक प्रवृत्ति के शोधन की क्षमता रहती है। उनके पास प्रकृष्ट विवेक रूप सम्यक् नेत्र होते हैं, जिससे ज्ञानी धर्मात्मा के सर्व आशय व प्रवृत्ति निर्दोष व न्याय शुद्ध होती है।

जो जीव संसार के त्रिविध ताप से संतप्त हुआ हो और वैसी स्थिति उसे असह बन पड़ी है तथा जिसे रंच मात्र कषाय कलंक नहीं सुहाता हो, जिससे उसे पूर्ण निष्कलंक होने की उत्कृष्ट भावना वर्तती हो, ऐसे आत्माओं के उद्धार व आश्रय हेतु एक मात्र कल्पद्रुम (कल्पवृक्ष) तुल्य यह शुद्ध अध्यात्म ज्ञान मार्ग ही आश्रय रूप है।

ज्ञानी धर्मात्मा को भी पूजा भक्ति आदि के भाव आते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि राग रहित ज्ञायक आत्मा पर रहती है। उन्हें धर्म का भान सतत् वर्तता रहता है। अंतरंग में वीतरागी आत्मा का लक्ष्य हो और बाह्य में जड़ अचेतन को इष्ट माने, उसकी भक्ति करे, यह कैसे बन सकता है क्योंकि जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। अतः

अन्तरशुद्ध चिदानन्द स्वरुप को जानकर उसे प्रगट किये बिना जन्म-मरण टलने वाला नहीं है, इसलिये अपने चैतन्य गुणों को प्रगट करने के लिए अपने परमात्म स्वरुप की भक्ति आराधना करते हैं।

प्रश्न - यह भक्ति आराधना तो व्यक्तिगत अन्तरंग है। इसका समाज से क्या संबंध है ? इसे दूसरा क्या जाने, फिर और सब जीव कैसा क्या करें ?

समाधान - धर्म मुक्ति मार्ग तो व्यक्तिगत होता ही है। इसमें एक जीव का दूसरे जीव से कोई सम्बंध नहीं है जो जैसा करेगा, उसका वैसा फल वही भोगेगा, परन्तु अध्यात्म दृष्टि बनाकर ज्ञान मार्ग की साधना सभी जीव कर सकते हैं। इसमें कोई विरोध भी नहीं है। उपलब्धि - स्थिति अपनी पात्रता और पुरुषार्थ के अनुसार होगी लेकिन लक्ष्य और उपाय एक सा किया जाता है, किया जा सकता है। जैसे और सारे - व्यवहारिक धन्धा, खेती आदि कार्य भी एक साथ एक से किये जाते हैं, वहां भाग्य अनुसार उपलब्धि होती है। धर्म मार्ग में पात्रता और पुरुषार्थ अनुसार उपलब्धि होती है। परन्तु यदि शुद्ध कारण है तो शुद्ध कार्य होगा - सम्यक् सही मार्ग है तो अपनी मंजिल लक्ष्य पर अवश्य पहुंचेगा। यदि विपरीत होगा, तो उसका परिणाम भी विपरीत होगा। यह बात सोचने समझने निर्णय करने का सौभाग्य मनुष्य को मिला है। मन, बुद्धि का होना ही मनुष्य की विशेषता है। इसमें जाति-पांति, नीच-ऊँच , छोटे-बड़े, गरीब-अमीर की बात ही नहीं है। यह स्वतंत्रता हर मनुष्य को है कि वह अपने स्वरुप के बारे में सोचे समझे, अपने भविष्य का निर्णय करे लेकिन यहां एक भूल हो जाती है कि मनुष्य कर्म के बारे में विचार करता है जहां वह परतंत्र है, और धर्म के संबंध में विचार नहीं करता जहां वह स्वतंत्र है। यहां पराधीन जाति सम्प्रदाय से बंधा रहता है। बस यही भूल दुर्गुति और दुःख का कारण है। हम अपने स्वरुप के बारे में स्वयं विचार करें, सच्चे देव, गुरु, शास्त्र क्या कहते हैं। मुक्ति का मार्ग क्या है ? इसका स्वयं निर्णय करके उस मार्ग पर चलें। **अनन्त ज्ञानियों का एक मत होता है तथा एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं।** अध्यात्मवादी ज्ञान मार्ग के पथिक बाह्यक्रिया कांड में नहीं उलझते, व्यवहारिक आचरण तो सहज चलता है। यहां तो सत्संग स्वाध्याय ज्ञान - ध्यान - तत्व - चर्चा ही प्रमुख रहती है। जैसा संसारी जीव

बाह्य में शोधन स्नान- ध्यान - पूजा - पाठ करता है, वैसा ही ज्ञानी अन्तर में शोधन स्नान - ज्ञान- ध्यान पूजा पाठ करता है।

प्रश्न - ज्ञानी का अन्तर शोधन स्नानादि कैसा होता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (८)

देवं गुरुं श्रुतं वन्दे, धर्म सुद्धं च विन्दते।
तिअर्थ अर्थ लोकंच, अस्नानं च सुद्धं जलं ॥८॥

अन्वयार्थ - (देवं) देव को (गुरुं) गुरु को (श्रुतं) शास्त्र जिनवाणी को (वन्दे) वंदना करना (धर्म शुद्धं) शुद्ध धर्म - निज शुद्धात्म स्वरुप (च) और (विन्दते) अनुभव करते (तिअर्थ) रत्नत्रय (अर्थ) प्रयोजनीय (लोकं) लोक में (च) और (अस्नानं) स्नान करते हैं (च) और (शुद्धं जलं) शुद्ध जल में।

विशेषार्थ -चिदानन्द मयी शुद्धात्म - स्वरुप जो सच्चा देव, गुरु, शास्त्र है उसकी वंदना करता हुआ - ज्ञानी पंडित - अपने शुद्ध स्वभाव रूपी धर्म की अनुभूति करता है, और जगत में इष्ट प्रयोजनीय, रत्नत्रय स्वरुप के शुद्ध जल में स्नान करता है।

आत्मा की प्रभुता की महिमा भीतर परिपूर्ण है। अनादि काल से उसकी सम्यक् प्रतीति के बिना उसका अनुभव नहीं हुआ, अनादि काल से पर लक्ष्य किया है किन्तु स्वभाव का लक्ष्य नहीं किया, शरीरादि में आत्मा का सुख नहीं है। शुभ राग में भी सुख नहीं है और मेरा स्वरुप शुभराग से रहित है। ऐसे भेद के विचार में भी सुख नहीं है। और मेरा स्वरुप शुभ राग से रहित है। ऐसे भेद के विचार में भी सुख नहीं है। इसलिये उस भेद के विचार में उलझना भी अज्ञानी का कार्य है, इसलिये उस नय पक्ष के भेद का आश्रय छोड़कर अभेद स्वभाव की अनुभूति में डूबना ही - ज्ञानी का स्नान है।

लौकिक व्यवहार में अशुद्धता को दूर करने के लिये स्नान करते हैं। पवित्र होने, शुद्ध होने के लिये नदी आदि के जल में स्नान करते हैं, स्नान करने से शुद्धता और शान्ति (बड़ी हल्की तबियत) हो जाती है।

यहां अन्तर शोधन शुद्ध स्वभाव की उपलब्धि - पूर्णता के लिये ज्ञानी अपने रत्नत्रय स्वरुप के शुद्ध जल में स्नान करता है। अपने पूर्णानन्द नाथ की अनुभूति में डुबकी लगाता है।

अखंडानन्द अभेद आत्मा का लक्ष्य नय पक्ष के द्वारा नहीं होता। नय पक्ष की विकल्प रूपी मोटर चाहे जितनी दौड़ाई जाये, मैं ज्ञायक हूँ, अभेद हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसे विकल्प करें फिर भी वे विकल्प स्वरुप के आंगन तक ही ले जायेंगे, किन्तु स्वरुपानुभव के समय तो वे सब विकल्प ही छूट जाते हैं। विकल्प को लेकर स्वानुभव नहीं हो सकता। जब तक किनारे पर खड़े हैं या कपड़े उतार कर नदी के पानी में खड़े हैं, तब तक स्नान नहीं होता डूबना, डुबकी लगाना ही स्नान है। इसी प्रकार नय पक्षों का ज्ञान स्वरुप के आंगन में पहुंचने के बीच में आता है। मैं स्वाधीन ज्ञान स्वरुपी आत्मा हूँ। कर्म जड़ हैं जड़ कर्म मेरे स्वरुप को नहीं रोक सकते, यदि मैं विकार करुं तो कर्म निमित्त कहलाते हैं किन्तु कर्म मुझे विकार नहीं कराते क्योंकि कर्म और आत्मा में परस्पर अत्यंत अभाव होने से दोनों द्रव्य भिन्न हैं। वे कोई एक दूसरे का कुछ नहीं कर सकते, किसी भी अपेक्षा में जड़ का कुछ नहीं करता, और जड़ मेरा कुछ नहीं करता, जो राग द्वेष होते हैं उन्हें भी कर्म नहीं कराता तथा वे परवस्तु में नहीं होते किन्तु मेरी अवस्था में होते हैं, वे राग द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है। निश्चय से मेरा स्वभाव रागरहित ज्ञान स्वरुप है।

इस प्रकार सभी पहलुओं (नयों) का ज्ञान पहले कर लिया है। किन्तु इतना करने तक भी भेद का आश्रय है। भेद के आश्रय से अभेद आत्मस्वरुप का अनुभव नहीं होता, फिर भी पहले उन भेदों को जानना आवश्यक है। जब इतना जान लेता है तब वह स्वरुप के आंगन तक (नदी के बीच तक) पहुंचा हुआ कहलाता है, उसके बाद जब वह स्व - सन्मुख अनुभव द्वारा अभेद स्वरुप में डूबता है यही रत्नत्रय के शुद्ध जल में स्नान करना कहलाता है। और यही कहा भी है -

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचि :॥

जो वस्तु है सो स्वतः परिपूर्ण स्वभाव से भरी हुई है। आत्मा का स्वभाव परापेक्षा से रहित एक रूप है। मैं कर्म संबंध वाला हूँ या कर्मों के संबंध

से रहित हूँ ऐसी अपेक्षाओं से आत्मा का आश्रय नहीं होता, यद्यपि आत्म स्वभाव तो अबंध ही है, किन्तु मैं अबन्ध हूँ - ऐसे विकल्प को भी छोड़कर निर्विकल्प ज्ञाता दृष्टा निरपेक्ष स्वभाव का आश्रय होने पर ही उसकी अनुभूति में डूबा जाता है।

एक बार निर्विकल्प होकर अंखड ज्ञायक स्वभाव को लक्ष्य में लिया कि वहाँ सम्यक् - प्रतीति हो जाती है। अखंड स्वभाव का लक्ष्य ही स्वरुप की शुद्धि के लिये कार्यकारी है।

अखंड सत्य स्वरुप को जाने बिना, श्रद्धा किये बिना,मैं ज्ञान स्वरुप आत्मा हूँ अबद्ध स्पष्ट हूँ - इत्यादि विकल्प भी स्वरुप की शुद्धि के लिये कार्यकारी नहीं है। एक बार अखंड ज्ञायक स्वभाव का संवेदन - लक्ष्य किया कि फिर जो वृत्ति उठती हैं, वे शुभाशुभ वृत्तियां अस्थिरता का कार्य करती हैं- किन्तु वे स्वरुप के रोकने में समर्थ नहीं है, क्योंकि श्रद्धा तो नित्य विकल्प रहित होने से जो वृत्ति उद्भूत होती है, वह श्रद्धा को नहीं बदल सकती।

यदि कोई विकल्प में ही रुक गया तो वह मिथ्या दृष्टि है।

जब सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा में स्थिर होता है तब उसके निर्विकल्प दशा होती है। तब राग के साथ बुद्धि पूर्वक सम्बन्ध नहीं होता, जैसे - जब नदी में डुबकी लगाते हैं उस समय किसी का भान या कोई विकल्प नहीं होता - इसी प्रकार शुद्ध अनुभव होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता - केवल एकाकार चिन्मात्र ही दिखाई देता है।

अनादि काल से आत्मा के अखंड रस को सम्यक्दर्शन के द्वारा नहीं जाना, इसलिये जीव पर में और विकल्प में रस मान रहा है, किन्तु मैं अखंड एक रूप स्वभाव शुद्ध चैतन्य हूँ उसी में मेरा रस है वही ज्ञानानन्द स्वभावी परमतत्व परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। इस प्रकार स्वभाव दृष्टि के बल से जो अपने अन्तर में उतरता है, उसे सहजानन्द स्वरुप के अमृत रस की अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। और जब ऐसे रत्नत्रयमयी सुख परम शान्ति - परमानन्द के धाम निज चैतन्य रत्नाकर में डुबकी लगाता है, तो अमृत रस झरता है और ध्रुव स्वभाव से पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है। ज्ञानी ऐसे रत्नत्रय के शुद्ध जल में स्नान कर अपने को पवित्र - निर्मल शुद्ध करता है।

शुद्धात्म स्वरुप का वेदन कहो - ज्ञान कहो- श्रद्धा कहो- चारित्र कहो- अनुभव कहो या साक्षात्कार कहो - जो कहो सो यह एक आत्मा ही है। यही देव गुरु धर्म है। इसी में लीन होने स्नान करने से परमात्म पद प्रगट होता है। इसी में बार-बार डुबकी लगाने से परमानन्द की उपलब्धि होती है। जैसे नदी में स्नान करने वाला बार - बार डुबकी लगाता है और अपने आप में मस्त प्रसन्न होता है उछलता है,डूबता है, ऐसे ही पंडित ज्ञानी जन अन्तर में डुबकी लगाते हैं । अभी इतनी शक्ति पात्रता नहीं है कि उसी में लय हो जायें, इसलिए नाना विधि से विविध प्रकार से स्नान करते हैं।

प्रश्न - पंडित ज्ञानी और किस प्रकार से स्नान करता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं

गाथा (९)

चेतना लष्यनो धर्मों, चेतयन्ति सदा बुधै।
ध्यानस्य जलं सुद्धं, न्यानं अस्नान पण्डिता॥ ९॥

अन्वयार्थ - (चेतना लष्यनो) चैतन्य लक्षण - शुद्धात्म स्वभाव ही (धर्मो) धर्म है (चेतयन्ति) चिन्तवन करता है। (सदा) सदैव, हमेशा (बुधै) ज्ञानी जन - पंडित (ध्यानस्य) ध्यान के (जलं सुद्धं) शुद्ध जल में (न्यानं) ज्ञान (अस्नान) स्नान करता (पण्डिता) पंडित ज्ञानी जन।

विशेषार्थ - अपना चैतन्य लक्षणमयी, त्रिकाली ध्रुव स्वभाव धर्म है। जिन्हें अपने चिद्रूपी स्वभाव की यथार्थ पहिचान है , वे ज्ञानी जन हमेशा चैतन्य स्वरुप का अनुभव करते हुए देखते हैं, कि मेरा ध्रुवधाम सिद्ध परमात्मा के समान शुद्ध है, इसी निज स्वभाव में अपना उपयोग एकाग्र कर महान चैतन्य का अवलोकन करते हैं तथा शुद्धात्म स्वरुप के ध्यान में स्थिर होकर ज्ञानी शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करते हैं।

ज्ञानी ने चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण किया है। अभेद में ही दृष्टि है, मैं तो ज्ञानानन्द मय शुद्धात्मा हूँ - उसे विश्रांति का महल मिल गया है। जिसमें अनन्त आनन्द भरा है। शान्ति का स्थान, आनन्द का स्थान, ऐसा पवित्र उज्जवल आत्मा है, वहां ज्ञायक रहकर ज्ञान सब करता है अर्थात् स्व-पर को जानता है परन्तु दृष्टि तो अभेद निज चैतन्य स्वरुप पर ही है, वह

उसमें ही डुबकी लगाता है, स्नान करता है, भेदज्ञान की धारा सतत् बहती रहती है।

चैतन्य के अनुभव का आनन्द, धर्मी का चित्त - अन्य कहीं लगने नहीं देता, वह तो स्वानुभव के शान्त रस में निरन्तर डूबा रहना चाहता है। वह तो चैतन्य के आनन्द की मस्ती में इतना मस्त है, कि अब अन्य कुछ भी करना शेष नहीं रहा।

शुद्धात्म स्वरुप के ध्यान में स्थिर होकर ज्ञानी शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करता है, जिससे उसकी अनेक गुण की पर्यायें निर्मल होती हैं खिलती हैं, जिस प्रकार बसन्त ऋतु आने पर वृक्षों में विविध प्रकार के पत्र - पुष्प फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी को चैतन्य की बसन्त बहार आने पर आनन्द सरोवर में डुबकी लगाने से अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं, शुद्ध होती जाती है।

जो न हो सके वह कार्य करने की बुद्धि करना मूर्खता की बात है। अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करने की बुद्धि करता है। और जो हो सकता है, वह नहीं करता। जीव को अटकने - भटकने के जो अनेक प्रकार हैं उन सब में से विमुख हो और मात्र चैतन्य स्वरुप में ही उपयोग को लगा दे, तो अनन्त काल की भटकन मिट जाये।

ज्ञानी अपने चैतन्य स्वरुप के ध्यान में एकाग्र होकर उस अतीन्द्रिय आनन्द अमृत सरोवर में डुबकी लगाता है, स्नान करता है। जिसे त्रिकाली स्वभाव में ऐसी आसक्ति हो गई है कि अन्य किसी पदार्थ में आसक्ति होती ही नहीं है।

ज्ञानी को भी क्षणिक विकल्प उठते हैं, लेकिन पूर्व की अज्ञान दशा अनुसार विकल्प में जोर नहीं है, विकल्प उठते हैं, और कुछ समय में ही खत्म हो जाते हैं।

ज्ञान तो वह है जिससे बाह्य वृत्तियां रुक जाती हैं, संसार पर से सचमुच प्रीति घट जाती है। सत्य को सत्य जानता है, जिससे आत्मा में अनन्त गुण प्रगट होते हैं। स्वानुभूति के काल में अनन्त गुण सागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता

हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है। इस प्रकार ज्ञानी बार - बार ज्ञान सरोवर में डुबकी लगाता है।

प्रश्न - अब ज्ञानी कौन से जल से स्नान करता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१०)

सुद्ध तत्वं च वेदन्ते, त्रिभुवनं न्यानं सुरं।
न्यानं मयं जलं सुद्धं, अस्नानं न्यान पण्डिता ॥१०॥

अन्वयार्थ - (शुद्ध तत्वं) शुद्धात्म तत्व (च) और (वेदन्ते) अनुभव करते हैं जो (त्रिभुवनं) तीन लोक में (न्यानं) ज्ञान का (सुरं) सूर्य है, श्रेष्ठ है (न्यानं मयं) ज्ञानमयी (जलं सुद्धं) शुद्ध जल में (अस्नानं) स्नान करते (न्यान) ज्ञान (पंडिता) पंडित जन - ज्ञानी।

विशेषार्थ - ज्ञानी शुद्ध तत्व (शुद्धात्मा) का अनुभव करते हैं और जानते हैं कि मैं शुद्धात्मा अनन्त गुणों मयी परमात्मा हूँ। तीनों लोकों में त्रिकाल शाश्वत रहने वाला ज्ञान का ईश्वर, परम ज्ञान रवि जो सर्व को प्रकाशित करने, देखने, जानने वाला है वह मैं हूँ ऐसे अपने परमात्म स्वरुप शुद्ध तत्व को ज्ञानी ध्यान में अनुभवते हैं, तथा इसी सत्स्वरुप के अनुभव में रत होकर शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करते हैं।

ज्ञानी रत्नत्रय के शुद्ध जल में, ध्यान के शुद्ध जल में और ज्ञान के शुद्ध जल में स्नान करता है।

ज्ञान का स्वभाव सामान्य विशेष सब को जानना है। जब ज्ञान ने सम्पूर्ण द्रव्य को विकसित पर्याय को और विकार को ज्यों का त्यों जानकर यह निर्णय किया कि जो परिपूर्ण स्वभाव है सो मैं हूँ और जो विकार रह गया है सो मैं नही हूँ, तब वह सम्यक् कहलाया। सम्यक्दर्शन रूप विकसित पर्याय को सम्यक्दर्शन की विषयभूत परिपूर्ण वस्तु को और अवस्था की कमी को, इन तीनों को सम्यक्ज्ञान यथावत् जानता है - अवस्था की स्वीकृति ज्ञान में है।

सम्यक्दर्शन एक निश्चय को ही (अभेद स्वरुप को ही) स्वीकार करता है, और सम्क्दर्शन का अविनाभावी सम्यक्ज्ञान निश्चय तथा

व्यवहार दोनों को यथावत् जानकर विवेक करता है। यदि ज्ञान निश्चय व्यवहार दोनों को न जाने, तो ज्ञान प्रमाण (सम्यक्) नहीं होता। यदि व्यवहार का आश्रय करे तो दृष्टि मिथ्या सिद्ध होती है। और यदि व्यवहार को जाने ही नहीं, तो ज्ञान मिथ्या सिद्ध होता है। ज्ञान निश्चय व्यवहार का विवेक करता है तब वह सम्यक् कहलाता है, और दृष्टि व्यवहार का आश्रय छोड़कर निश्चय को अंगीकार करे तो वह सम्यक् कहलाती है।

सम्यक्दर्शन का विषय अखंड द्रव्य ही है। सम्यक्दर्शन के विषय द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद नहीं है। द्रव्य, गुण, पर्याय से अभिन्न वस्तु ही सम्यक्दर्शन को मान्य है। (अभिन्न वस्तु का लक्ष्य करने पर जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह सामान्य वस्तु के साथ अभिन्न हो जाती है) सम्यक्दर्शन रूप पर्याय को भी सम्यक्दर्शन स्वीकार नहीं करता, एक समय में अभिन्न परिपूर्ण द्रव्य ही सम्यक्दर्शन को मान्य है। एकमात्र पूर्ण रूप आत्मा को सम्यक्दर्शन प्रतीति में लेता है परन्तु सम्यक्दर्शन के साथ प्रगट होने वाला सम्यक्ज्ञान सामान्य - विशेष सबको जानता है। सम्यक् ज्ञान पर्याय को और निमित्त को भी जानता है। सम्यक्दर्शन को भी जानने वाला सम्यक्ज्ञान है।

जो जीव, आत्मा के त्रैकालिक स्वरुप को स्वीकार करे, किन्तु यह स्वीकार न करे, कि अपनी भूल अज्ञान के कारण वर्तमान पर्याय में निज के विकार हैं। वह निश्चयाभासी है। उसे शुष्क ज्ञानी भी कहते हैं तथा प्रथम व्यवहार चाहिए, व्यवहार करते करते निश्चय (धर्म) होता है। ऐसा मानकर शुभराग, बाह्य क्रिया कांड - पूजा - भक्ति व्रतादि करता है। परन्तु अपना त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव जो मात्र ज्ञायक है, ऐसा नहीं मानता और न अन्तर्मुख होता है। ऐसे जीव को यदि सच्चे देव - गुरु शास्त्र तथा सप्त तत्वों की व्यवहार श्रद्धा हो तो भी अनादि की निमित्त तथा व्यवहार (भेद पराश्रय) की रुचि नहीं छोड़ता, और सत्व तत्व की निश्चय श्रद्धा नहीं करता, तो वह व्यवहाराभासी है, उसे क्रिया जड़ भी कहते हैं। और जो यह मानता है कि शारीरिक क्रिया से धर्म होता है वह व्यवहाराभासी से भी अतिदूर घोर अन्धकार में है।

सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में वस्तु स्वरुप की ऐसी

पूरिपूर्णता उपदिष्ट हुई है कि प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से पूर्ण परमेश्वर परमात्मा है, उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। वैसे ही प्रत्येक जड़ परमाणु भी अपने स्वभाव से परिपूर्ण है। इस प्रकार चेतन व जड़ प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र व स्वतः ही परिपूर्ण है। किसी भी तत्व को किसी अन्य तत्व के आश्रय की आवश्कता नहीं है। ऐसा समझ कर जो अपने परिपूर्ण आत्मा की श्रद्धा व आश्रय करता है। पर का आश्रय छोड़ता है वह ज्ञानी पंडित है, और इस ज्ञान रूपी जल में स्नान करने से स्वयं पवित्र परमात्मा होता है।

चैतन्य तत्व के लक्ष्य से रहित जो कुछ किया, वह सब सत्य से विपरीत संसार का कारण ही हुआ। सम्यक्ज्ञान की कसौटी पर रखने से उनमें से एक भी बात सच्ची नहीं निकलती, अतः जिन्हें आत्मा से अपूर्व धर्म प्रगट करना हो, उन्हें अपनी पूर्व में मानी हुई - सभी बातों को अक्षरशः मिथ्या जानकर - ज्ञान का संपूर्ण बहाव ही बदलना पड़ेगा। परन्तु जो अपनी पूर्व मान्यताओं को रखना चाहते हैं और उनके साथ धर्म प्रगट करने की बात, ज्ञान का मेल बैठाना चाहते हैं, तो अनादि से चली आ रही मिथ्या मान्यता-अज्ञान का नाश नहीं होता और ऐसा नवीन अपूर्व सत्य उनकी समझ में नहीं आयेगा।

यह आत्म स्वभाव की बात सूक्ष्म पड़े तो भी सम्पूर्ण मनोयोग से समझने योग्य है। आत्मा सूक्ष्म है, तो उसकी बात भी तो सूक्ष्म ही होगी। जीव ने एक स्व को समझे बिना अन्य सब कुछ अनन्त बार किया है, परन्तु उसमें संसार परिभ्रमण नहीं छूटा, यह अवसर जन्म मरण के चक्र से छूटने को मिला है।

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरुप की ओर ढलता है। वह उसमें डुबकी लगाता - स्नान करता है।अभी निज स्वरुप में परिपूर्ण रूप से स्थिर नहीं हुआ, इसलिये बार बार उछलता डूबता है। इससे उसे अतीन्द्रिय आनन्द आता है। परम शान्ति मिलती है, और इससे पर्याय में पवित्रता शुद्धि होती है।

शुद्धात्म स्वरुप की ओर ढलना ही विकल्प के अभाव होने की रीति, विधि है। उपयोग का झुकाव अन्तर्मुख स्वभाव की ओर होने पर विकल्प छूट

जाते हैं। जैसे नदी में गोता लगाने डूबने पर - पर का भान नहीं रहता है। यह ज्ञान सरोवर अगम्य अथाह है, जो इसमें डुबकी लगाते स्नान करते हैं वह पवित्र परमात्मा हो जाते हैं।

प्रश्न - यह ज्ञान सरोवर कितना विशाल है। इसकी थाह कौन पाते हैं?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं.....

गाथा (११)

संमिक्तस्य जलं सुद्धं, संपूरनं सर पूरितं।
अस्नानं पिवते गनधरनं, न्यानं सर नंतं धुवं॥ ११॥

अन्वयार्थ - (संमिक्तस्य) सम्यक्त्व का (जलं) जल(सुद्धं) शुद्ध है (संपूरनं) सम्पूर्ण, परिपूर्ण, लबालब (सर) सरोवर (पूरितं) भरा हुआ है (अस्नानं) स्नान करते (पिवते)पीते जलपान करते (गनधरनं)गणधर देव (न्यानं) ज्ञान का (सर) सरोवर (नंतं)अनन्त - विशाल (धुवं) निश्चय-अटल ध्रुव है।

विशेषार्थ - सम्यक्त्व के निर्विकल्प शुद्ध जल से परिपूर्ण भरा हुआ अपना अनन्त चतुष्टय मयी निज परमात्मा ध्रुव स्वभाव शुद्ध ज्ञानमयी महान सरोवर है जो अनन्त ज्ञानादि गुणों का निधान है।

चार ज्ञान (मति- श्रुति- अवधि- मनः पर्यय) के धारी वीतरागी संत गणधर देव जो सर्वज्ञ परमात्मा केवल ज्ञानी अरिहन्त भगवान की दिव्य ध्वनि का प्रसारण - विस्तार करते हैं, वह इस ज्ञान सरोवर के जल में अवगाहन स्नान करते हैं। इसी का जल पान करते हैं। यह आत्म ज्ञान सरोवर महान विशाल अनादि अनन्त है।

इसकी थाह केवल ज्ञानी अरिहन्त परमात्मा ही पाते हैं । केवल ज्ञान होने पर एक समय का उपयोग होता है और वह एक समय की ज्ञान पर्याय तीन काल एवं तीन लोक जान लेती है । ज्ञानी अपने ज्ञान स्वभाव का आलम्बन के बल से ज्ञान में निश्चय व्यवहार की मैत्रीपूर्वक आगे बढ़ता जाता है, और ज्ञान स्वभाव अपनी अद्भुतता में समा जाता है ।

यह तो बाह्य लोक है, उससे चैतन्य लोक पृथक ही है, बाह्य में लोग देखते हैं कि इन्होंने ऐसा किया - ऐसा किया। परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहां रहते हैं ? क्या करते हैं ? वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। बाहर से देखने वाले

मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियायें करते या विकल्पों में पड़ते दिखाई देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं,चैतन्य लोक - ज्ञान सरोवर की गहराई में गोता लगाते हैं।

ज्ञान स्वभाव तो अनन्त शक्तियों का स्वामी है महान है - प्रभु है। उसके सामने वर्तमान पर्याय अपनी पामरता स्वीकार करती है। ज्ञानी को स्वभाव की प्रभुता और पर्याय की पामरता का विवेक वर्तता है। वर्तमान दशा तो अधूरी है। पर्याय में जब तक पूर्ण वीतरागता न हो जाये, और चैतन्य अपने ध्रुव धाम ज्ञानानन्द स्वभाव में पूर्ण रूप से सदा के लिऐ विराजमान न हो जाये, तब तक पुरुषार्थ की धारा तो उग्र ही होती जाती है।

जिस समय ज्ञानी की परिणति बाहर दिखाई देती है, उसी समय उन्हें ज्ञायक स्वभाव भिन्न वर्तता है। जैसे किसी को पड़ौसी के साथ बड़ी मित्रता हो, उसके घर आता जाता हो परन्तु वह पड़ौसी को अपना नहीं मान लेता। उसी प्रकार ज्ञानी को विभाव में कभी एकत्व परिणमन नहीं होता, ज्ञानी सदा कमल की भांति निर्लेप रहते हैं। विभाव से भिन्न रूप ऊपर -ऊपर तैरते हैं।

विभाव का अंश वह दुःख रूप है, भले ही उच्च से उच्च शुभभाव रूप या अति सूक्ष्म राग रूप प्रवृत्ति हो तथापि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है, और जितना निवृत्त होकर स्वरुप में लीन हुआ, उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है।

जिसने शान्ति की, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद चख लिया, उसे राग नहीं पुसाता।

गणधर देव ऐसे ज्ञान सरोवर में निवास करते हैं, उसमें विशेष - विशेष एकाग्र होते - होते वह पूर्ण वीतराग केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान होने से उन्हें ज्ञान की अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। ज्ञान का अन्तर्मुहुर्त का स्थूल उपयोग छूटकर एक समय का सूक्ष्म ज्ञानोपयोग हो जाता है। वह ज्ञान अपने क्षेत्र में रहकर सर्वत्र लोकालोक को जान लेता है। भूत - वर्तमान -भविष्य की सर्वपर्यायों को क्रम पड़े बिना एक समय में वर्तमानवत् जानता है। स्व पदार्थ तथा अनन्त पदार्थों की तीनों काल की

पर्यायों के अनन्त - अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है। ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञानी ही इस अगाध ज्ञान सरोवर की थाह पाते हैं और निरन्तर उसी में निमग्न रहते हैं।

वीतरागी संत गणधर देवों का निवास इसी ज्ञान सरोवर में रहता है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे - गहरे चला जाता है। शरीर के प्रति राग छूट गया है, शान्ति का सागर उमड़ा है - चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे उछल रही हैं। ज्ञान में कुशल है, दर्शन में प्रबल है। समाधि के वेदक हैं, अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। ऐसे ही ज्ञानी अपने ज्ञान स्वभाव में डुबकी लगाते हैं वही ज्ञान सरोवर में स्नान करते हैं।

प्रश्न - ज्ञानी अब और कौन से जल से स्नान करते हैं ?

इसके समाधान में सदगुरु आगे गाथा कहते है.....

गाथा (१२)

शुद्धात्मा चेतना नित्वं, सुद्ध दिस्टि समं धुवं।
सुद्ध भाव अस्थरी भूतं, न्यानं अस्नान पण्डिता॥ १२॥

अन्वयार्थ - (शुद्धात्मा) शुद्धात्म स्वरुप परमात्मा (चेतना) चैतन्यमयी ज्ञान स्वभावी (नित्वं) सदैव, अनादि अनंत है (शुद्ध दिस्टि) सम्यक्दृष्टि (समं) इसी प्रकार, उन्हीं जैसा, समान (धुवं) अपने को निश्चय से जानते हैं, ध्रुव अटल है (शुद्ध भाव) शुद्ध स्वभाव में (अस्थरी भूतं) लीन होकर ठहरते हैं (न्यानं) ज्ञान में (अस्नान) स्नान - नहाना (पण्डिता) पंडितजन ज्ञानी।

विशेषार्थ - शुद्धात्म स्वरुप, परमात्मा सदैव, चैतन्यमयी अनादि अनंत शुद्ध है। शुद्ध दृष्टि ज्ञानी, ऐसा ही अपना स्वरुप है ऐसा जानते हैं कि मैं निर्मल ज्ञानमयी शुद्ध चैतन्य ध्रुव स्वभाव शुद्धात्मा हूँ, इसी अनुभूति युत निर्णय से अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरते हैं, लीन होते हैं यही पंडित का ज्ञान स्नान है।

ज्ञान पूर्वक शुद्ध भाव में स्थिर होना, ठहरना ही शुद्धोपयोग है - और यही शुद्ध मुक्ति मार्ग है।

स्वरुप में लीन होने पर बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होना ही शुद्धोपयोग है। स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने के बाद काल क्रम में

शुद्धोपयोग होता है। ज्ञान में एकाग्रता होने से ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय से सहज शुद्धोपयोग हो जाता है। यही पंडित का ज्ञान स्नान है।

पर को छोडूं - अथवा राग को छोडूं यह बात तो रहती ही नहीं। ज्ञान स्वभाव का जो पुरुषार्थ है, उस स्वभाव सन्मुख दशा में उग्रता होते ही उसमें डूबते ही शुद्धोपयोग सहज ही हो जाता है।

प्रश्न - ऐसा ज्ञानी पंडित बाह्य में कुछ भी करता रहे क्या उसको शुद्धोपयोग हो सकता है ?

समाधान - जिनके अन्तर में भेदज्ञान रूपी कला जागी है। चैतन्य के आनन्द का वेदन हुआ है, ऐसे ज्ञानी - धर्मात्मा सहज ही वैरागी होते हैं। ऐसे ज्ञानी पंडित विषय कषायों में मग्न हों - यह विपरीतता सम्भावित नहीं है। जिन जीवों को विषयों में सुख बुद्धि है वे ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञानी के तो अन्तर के चैतन्य के अलावा सुख कहीं नहीं है, समस्त विषय सुख के प्रति उदासीनता होती है। सम्यक्दृष्टि जीव आत्मज्ञान पूर्वक आचरण पालते हैं। उनकी भूमिकानुसार व्रत संयमादि होते हैं। श्रावक को बारह व्रतादि का तथा मुनि को महाव्रतादि का पालन होता है। पर उनका लक्ष्य बाह्य आचरण पर नहीं होता है। इसे धर्म नहीं मानते, उनका पूरा जोर तो अपने ज्ञान स्वभाव की साधना का ही रहता है।

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी होने पर कोई पूर्ण वीतरागता नहीं हो जाती, सम्यक्दर्शन होने के बाद भी रागादि भाव तो आते हीं है। जब निर्विकल्प आनन्द में ज्ञान पर्याय एकाग्र हो जाये, वह तो श्रेयस्कर ही है, और उसके लिये ही पूरा पुरुषार्थ करते हैं। परन्तु जब निर्विकल्प आनन्द में न रह सके तब स्वाध्याय, देव - गुरु की भक्ति,संयम तप आदि प्रशस्त राग में लगे रहते हैं। इसके विपरीत कोई विकथा विषय - कषाय - पापादि - निन्दनीय प्रवृतियों में लगे रहते हैं, तो वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं।

आत्मा का स्वरुप परिपूर्ण है, ऐसा अन्तर भान हुआ हो, और पुण्य छोड़कर पाप में प्रवर्तन करे। तथा शास्त्र की ओट लेकर कहे कि इनमें क्या रखा है। यह पुण्य पाप सब हेय है, तो वह निश्चयाभाषी, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि है, जो दुर्गति जायेगा।

ज्ञानी को तो पर्याय का विवेकभी वर्तता है। ज्ञानी उसे कहते हैं जो त्रिकाली ध्रुव स्वभाव को पकड़े है। उसकी पर्याय में वीतरागता होने पर पर्याय में रुकता नहीं है। उसकी दृष्टि तो ध्रुव तत्व शुद्धात्मा पर ही टिकी है। पात्रतानुसार पर्याय का परिणमन चल रहा है। पर अब पर्याय का लक्ष्य नहीं है। अपने ज्ञान स्वभाव में ही बार - बार डुबकी लगाता है। स्नान करता है और जो शुभाशुभ पर्यायें आती हैं, उनका प्रक्षालन करता जाता है। उसे तो अपने पूर्ण शुद्ध सिद्ध पद का ही लक्ष्य है।

प्रश्न - यह ज्ञानी किन पर्यायों का कैसा प्रक्षालन करता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१३)-(१४)

प्रषालितं त्रिति मिथ्यातं, सल्यं त्रियं निकन्दनं।
कुन्यानं राग दोषं च, प्रषालितं असुह भावना।।१३।।
कषायं चत्रु अनंतानं, पुण्य पाप प्रषालितं।
प्रषालितं कर्म दुस्टंच, न्यानं अस्नान पंडिता।। १४।।

अन्वयार्थ - (प्रषालितं) प्रक्षालन करना अर्थात कपड़े से पोंछ कर साफ करना (स्नान करने के बाद तौलिया आदि से रगड़ कर शरीर को पोंछते हैं, उसी को प्रक्षालन कहते हैं।) (त्रिति मिथ्यातं) तीन मिथ्यात्व (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व) (सल्यंत्रियं) तीन शल्य (माया, मिथ्या, निदान) (निकन्दनं) निकालना दूर करना (कुन्यानं) कुज्ञानों, यह भी तीन होते हैं, कुमति, कुश्रुति, कुअवधि (राग दोषंच) और राग द्वेष को (प्रषालितं) प्रक्षालित करते हैं (असुहभावना) अशुभ भावना।

(कषायं) कषायें (अन्तर भावना) (चत्रु अनंतानं) अनन्तानुबंधी चार क्रोध, मान, माया, लोभ (पुण्य - पाप) पुण्य पाप - शुभाशुभ भाव तथा क्रिया (प्रषालितं) प्रक्षालित करते हैं (कर्म दुष्टं च) और दुष्ट कर्मों को पापादि रूप अशुभ कर्म (न्यानं) ज्ञान में (अस्नान) स्नान करते (पंडिता) पंडितजन, ज्ञानी।

विशेषार्थ - शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान करके ज्ञानीजन तीन मिथ्यात्व (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व) का प्रक्षालन करते अर्थात् धोकर साफ कर देते हैं। दुःख की कारण - मिथ्या,

माया, निदान तीन शल्यों को दूर कर देते हैं। संसार में परिभ्रमण का कारण कुज्ञान और राग द्वेषादि द्वोषों को तथा पाप बंध कराने वाली अशुभ भावना का भी प्रक्षालन कर ज्ञानी पवित्रता को ग्रहण करते हैं।

शुद्ध ज्ञान के जल से ज्ञानी अनन्तानुबंधी चार कषायें (क्रोध - मान-माया - लोभ) को धोकर साफ कर देते हैं। शुभ रूप परिणमन पुण्य और अशुभ रूप पाप कहलाता है। ज्ञानी को इन दोनों से प्रीति नहीं होती, अतः पुण्य पाप का भी प्रक्षालन कर देते हैं। चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कराने में निमित्त भूत सभी दुष्ट कर्मों (पापादि रूप अशुभ कर्म) का ज्ञानी प्रक्षालन कर देते हैं।

प्रक्षालन शब्द अन्तर शोधन में बड़ा व्यापक अर्थ रखता है। जैसे बाह्य में स्नान करने के बाद तौलिया, कपड़ा वगैरह से शरीर को रगड़-रगड़ कर चारों तरफ से साफ करते हैं, सारी गन्दगी मैल आदि साफ करने के बाद पानी को सुखा देते हैं, इसी प्रकार अन्तर शोधन में ज्ञानी अपने अन्तरंग, बहिरंग सभी प्रकार के दोषों को पोंछकर साफ करता है।

जैसा कि बारह भावना में कहा है .....

ज्ञानदीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर।।

अनादि अज्ञान - मिथ्यात्व - शरीरादि कर्मों का संयोग होने से संस्कार वश जीव के साथ क्या - क्या और किन-किन बातों का संबंध जुड़ जाता है, यह बड़ी विडम्बना बहुत सूक्ष्म संधियां हैं। किस जीव के साथ क्या लगा है यह वह स्वयं ही जान सकता है। अन्य कोई न जान सकता न उन्हें निकाल सकता। सर्वज्ञ परमात्मा जानते हैं सद्गुरु बताते हैं पर उन्हें निकालने में कोई दूसरा समर्थ नहीं है, यह तो स्वयं को ही स्वयं का शोधन करना पड़ता है। और इसमें एक मात्र ज्ञान ही सहकारी है। जितना अपना सूक्ष्म ज्ञान होता जायेगा, जितना ज्ञानोपयोग होगा, ज्ञान में अवगाहन करेंगे चिन्तन - मनन चलेगा उतना ही अन्तर शोधन होता है। यह तो बेरी के कांटे हैं, जो एक - एक कर बीन - बीन कर निकालना पड़ते हैं। ज्ञानी पंडितजन शुद्ध ज्ञान जल में स्नान कर इनका प्रक्षालन करते हैं।

वीतराग कथित जिनवाणी, व्यवहार - अशुभ से बचाकर जीव को

शुभ भाव में ले जाता है। उसका दृष्टांत मिथ्यादृष्टि - द्रव्यलिंगी साधू हैं, वे भगवान के द्वारा कथित व्रतादि का निरतिचार पालन करते हैं, इसलिये शुभ भाव के कारण नवमें ग्रैवेयक तक जाते हैं, किन्तु उनका संसार बना रहता है, और भगवान के द्वारा कथित शुद्ध निश्चयनय - ज्ञान मार्ग - शुभ और अशुभ दोनों से बचाकर जीव को शुद्ध भाव में मोक्ष में ले जाता है। उसका दृष्टांत ऐसे ज्ञानी सम्यक्दृष्टि हैं जो कि निश्चय मोक्ष सिद्ध पद प्राप्त करते हैं।

जिसे अपना हित आत्म कल्याण करना है। उसे वस्तु स्वरुप धर्म के यथार्थ स्वरुप को समझकर पराश्रय छोड़ना आवश्यक है। जब तक पराधीनता - पराश्रयपना रहेगा, तब तक कभी मुक्ति होने वाली नहीं है।

जिस ज्ञान में **स्व** - अपना स्वरुप, **अर्थ** विषय, व्यवसाय, **यथार्थ** निश्चय में तीन बातें पूरी हों, उसे सम्यक्ज्ञान कहते हैं। अर्थात् जिस ज्ञान में विषय प्रतिबोधक साथ साथ स्व स्वरुप प्रतिभासित हो और वह भी यथार्थ हो तो उस ज्ञान को सम्यक्ज्ञान कहते हैं। श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररुपित ज्ञान के समस्त भेदों को जानकर, पर भावों को छोड़कर और निज स्वरुप में स्थिर होकर, जीव जो चैतन्य चमत्कार मात्र है उसमें प्रवेश करता है, स्नान करता है, गहरा उतर जाता है वह पुरुष शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

ज्ञान स्वरुप आत्मा के अवलम्बन से बार बार ज्ञान में स्नान करने से (१) निज पद की प्राप्ति होती है (२) भ्रान्ति का नाश होता है (३) कर्मों का नाश क्षय होता है (४) राग द्वेष उत्पन्न नहीं होते (५) कर्मों का बंध नहीं होता (६) सब शुभ - अशुभ भाव मिथ्यात्व शल्य कषायें दूर होती हैं।

पर द्रव्य, जड़ कर्म और शरीर से जीव त्रिकाल भिन्न है। जब वे एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध से सहित हैं, तब भी जीव के साथ एक नहीं होते, ऐसा सम्यक्ज्ञान होने पर उनकी उन्मत्तता दूर हो जाती है, इसी का नाम प्रक्षालन करना है।

प्रश्न - इस ज्ञानी पंडित की स्थिति क्या होती है। क्या यह क्षायिक सम्यक्दृष्टि वीतरागी साधु होता है ? क्योंकि जिन का प्रक्षालन बताया गया है, वह तो सामान्य अव्रत दशा में नहीं हो सकता। जैसे तीन मिथ्यात्व, चार

अनन्तानुबंधी कषाय, क्षायिक सम्यक्त्व होने पर ही साफ होती हैं। तीन कुज्ञान - सम्यक्ज्ञान होने पर जाते हैं, तीन शल्य पंचम गुण स्थानवर्ती होने पर जाती हैं और राग - द्वेष - अशुभ भावना पुण्य - पाप - दुष्ट कर्म (पापादि अशुभ कर्म) यह वीतरागी निर्ग्रन्थ साधु होने पर ही बिलाते हैं, करणाणु योग से यह बात सिद्ध है।

समाधान - यह बात बिल्कुल सत्य है। ज्ञानी पंडित का मतलब कोई अवृती घर गृहस्थी वाले जीव से नहीं है। यहां तो जो सम्यक्दर्शन पूर्वक सम्यक्ज्ञानी हुआ है, वह किस भूमिका में बैठा है, यह उसकी वर्तमान पात्रता परिस्थिति की बात है। पर उसका मार्ग - पूजा का विधान तो अपना अन्तर शोधन है, और वह इन सब की सफाई करता है। यह एक दिन की बात नहीं है कि इधर नहाया - प्रक्षालन किया, और पवित्र हो गये। यह तो जब तक ऐसी पूर्ण शुद्ध सही दशा नहीं बनती, तब तक बराबर ज्ञानोपयोग करता हुआ अन्तरशोधन करता जाता है। ज्ञानी को न उकताहट है न जल्दी है, उसे वस्तु स्वरुप का ज्ञान है कि जिस पर्याय में जब जैसी शुद्धि आना है, वह उसी समय आयेगी , और जब तक पर्याय शुद्ध नहीं होती - तब तक अपना पुरुषार्थ ज्ञानोपयोग,ज्ञान स्नान करते हुये - स्वयं आनन्द में रहता है। जब वैसी पात्रता होगी - तभी आगे बढ़ने की बात है।

इसको छोडूँ - इसको ग्रहण करुं, यह बात तो रहती ही नहीं है बल्कि शुद्धोपयोग को लाने की भी बात नहीं है। यह वस्तु की मर्यादा है। शुद्धोपयोग का काल न हो तो - क्या ज्ञानी उस समय उसे लाना चाहता है, क्या पर्याय क्रम बदल सकता है ? नहीं। वह तो ज्ञान स्वभाव की ओर का पुरुषार्थ करता है, जिससे सहज ही सब क्रम अपने आप चलता रहता है।

जिस समय जो परिणमन होनें हैं, सो होंगे ही। समकिती को उन्हें बदलने की बुद्धि नहीं होती। पर्याय बदलने की बुद्धि तो मिथ्यादृष्टि को होती है। पर वह भी बदलती नहीं है, सिर्फ विकल्प करता है।

आत्मा में जो पंच महाव्रत - भक्ति आदि के भाव होते हैं। वह भी शुभ राग आस्रव है। सम्यक्दृष्टि को भी जितना रागांश है, वह धर्म नहीं है। राग रहित व सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता रूप शुद्ध स्वभाव ही धर्म है।

मैं ज्ञायक हूँ - ऐसे ज्ञान स्वभाव की श्रद्धा - ज्ञान पूर्वक जितना वीतराग भाव होता है वह संवर ही धर्म है, तथा उसी समय जो रागांश है वह आश्रव है।

इस प्रकार ज्ञानी वस्तु स्वरुप को जानता हुआ, निरन्तर ज्ञान में अवगाहन करता है। और जैसे - जैसे पर्याय में शुद्धि आती जाती है। वह स्वतः ऊपर उठता जाता है। आंख में कण भले ही सहन हो जाये, परन्तु ज्ञान मार्ग में एक अंश की कमी, भूल नहीं चलती।

प्रश्न- यह ज्ञानी कैसा होता है ?

इसी बात को स्पष्ट करते हुये सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१५)

प्रषालितं मनं चवलं, त्रिविधि कर्म प्रषालितं।
पंडितो वस्त्र संजुक्तं, आभरणं भूषण क्रीयते॥ १५॥

अन्वयार्थ - (प्रषालितं) प्रक्षालित करता है (मनं चवलं) मन की चंचलता को (त्रिविधि कर्म) तीन प्रकार के कर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म (प्रषालितं) प्रक्षालित करता है (पंडितो) पंडित - ज्ञानी जन (वस्त्र) कपड़ा (संजुक्तं) पहनता है (आभरनं भूषण) गहने आभूषण जैसे करधोनी, हार आदि पहनते हैं (क्रीयते) धारण करता है।

विशेषार्थ - शुद्ध ज्ञान मयी जल से ज्ञानी मन की चंचलता और तीनों कर्मों का प्रक्षालन करते हैं अर्थात् धोकर साफ कर देते हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म से भिन्न निज स्वभाव को पहिचानते हैं, इसलिये पुरुषार्थी को कर्म की प्रबलता नहीं होती। इस प्रकार ज्ञानी ने शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान कर समस्त दोषों को धोकर साफ कर दिया है।

अब यह पंडित अर्थात् ज्ञानी अपने वस्त्र और आभूषणों से संयुक्त होता, अर्थात् धारण करता है।

ज्ञानी जन, ज्ञान मार्ग की साधना अर्थात अन्तरशोधन रूप निज स्वरुप का आराधन करते हैं जिससे रागादि मल विकार सब धुल जाते हैं, साफ हो जाते हैं और अपना शुद्ध चैतन्यमयी टंकोत्कीर्ण अप्पा - प्रकाश मान होने लगता है।

जब तक तीन मिथ्यात्व, तीन शल्य, तीन कुज्ञान, राग - द्वेष,

अशुभ भावना, अनन्तानुबंधी चार कषाय , पुण्य - पाप,दुष्ट कर्म, मन की चंचलता, और तीनों कर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म, की शुद्धि नहीं होती, तब तक ज्ञानी ज्ञान रूपी जल में अवगाहन - स्नान -करता रहता है। जब तक इनको धो पोंछ कर साफ नहीं कर देता, अर्थात् जब यह रहते ही नहीं है तब वह सज - धज कर तैयार होता है।

दृष्टि का विषय ध्रुव तत्व शुद्धात्मा है, उसमें तो अशुद्धता की बात ही नहीं है, परन्तु पर्याय में जो अशुद्धि है, उसका ज्ञान - ज्ञानी को रहता है। उसी को शुद्ध करने के लिये ज्ञानी निरन्तर, ज्ञानोपयोग - ज्ञान में स्नान करता है।

ज्ञानी को यथार्थ द्रव्य दृष्टि प्रगट हुई है। वह ध्रुव तत्व के आलम्बन द्वारा अन्तर स्वरुप स्थिरता में वृद्धि करता जाता है, जिससे पर्याय में शुद्धि होती जाती है। यथार्थ दृष्टि होने के पश्चात् भी ज्ञानी, सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल शुद्ध पर्याय जितने - जितने अंश में प्रगट होती है, वह उसे ही धर्म मानता है। इससे ही यह सारे दोष अपने आप बिलाते जाते हैं। यही अन्तर शोधन का मार्ग है।

ज्ञानी को अपने वर्तमान शरीरादि संयोग के संहनन - द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अनुकूलता - प्रतिकूलता - कर्मों का उदय स्थिति अनुभाग तथा एक- एक समय रूप चलने वाली अपनी पर्याय की पात्रता का ज्ञान होता है। तद् अनुसार ही वह आचरण करता है।

विकल्प का कारण बने, ऐसा कोई कार्य ज्ञानी नहीं करता, ज्ञानी ज्ञातापने के कारण निश्चय से वैरागी है। वह उदय में आये हुये कर्म को मात्र जान ही लेता है। भोगोपभोग में होते हुये भी ऐसा जानता है कि राग व शरीरादि की समस्त क्रिया पर हैं और स्वयं ज्ञाता रूप है, इसलिये उसे किसी बात में जल्दी या उकताहट नहीं है, वह तो निरंतर अपने ज्ञान - आनन्द में मगन रहता है, और सहज में यह सब क्रम चलता रहता है । जिसे स्वरुपाचरण का अंश प्रगट हो गया, वह शान्ति पूर्वक सहजानन्द में रहता है। वह द्रव्य, क्षेत्र , काल, भाव देखकर ही आगे बढ़ता है, कोई भी नियम प्रतिज्ञा लेता है। **ज्ञानी किसी हठ के बिना - आक्षेप बिना पर के दोषों से उन्मुख होकर निज परिणाम के अवलोकन से अपनी दिखने वाली**

योग्यता आदि के विचार पूर्वक ही आगे बढ़ता है। जब यह सब शुद्धि हो जाती है - तो अब वह वस्त्राभूषण पहनता है। सज - धज कर तैयार होता है।

प्रश्न - वीतराग मार्ग में तो वस्त्राभूषण उतारे जाते हैं - यह ज्ञानी कौन से वस्त्राभूषण पहनता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं.....

गाथा (१६)

वस्त्रं च धर्म सद्भावं, आभरणं रत्नत्रयं।
मुद्रिका सम मुद्रस्य, मुकुटं न्यानं मयं धुवं ॥ १६॥

अन्वयार्थ - (वस्त्रं) वस्त्र - कपड़े, (च) और (धर्म सद्भावं) शुद्ध स्वभाव रूपी, चैतन्य लक्षण मयी निज स्वभाव धर्म है (आभरणं) आभूषण गहने (रत्नत्रयं) रत्नत्रय, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्रमयी,(मुद्रिका) अंगूठी - मुद्रिका (सम मुद्रस्य) समताभाव की मुद्रिका, समदृष्टि हो जाना - अथवा जिनेन्द्र के समान, जिन मुद्रा धारण करना (मुकुटं) मुकुटताज (न्यानंमयं) ज्ञानमयी जो (धुवं) ध्रुव स्वभाव निश्चल - अटल है।

विशेषार्थ - ज्ञानी अपने शुद्ध स्वभाव रूपी धर्म के वस्त्रों को धारण करता है। तथा रत्नत्रय के अनुपम आभूषणों से संयुक्त होकर अवर्णनीय शोभा को प्राप्त हुआ अतीन्द्रिय आनन्द में डूबता हुआ, ज्ञानी अपने ध्रुव स्वभाव में रमण करने को सदा उत्साहित रहता है।

साधु पद पर प्रतिष्ठित होकर ज्ञानी - वीतराग दशा रूप समता मयी मुद्रिका अंगूठी धारण करता है, फिर उसे कुछ भी अच्छा बुरा नहीं लगता, समभाव में समदृष्टि हो जाता है। समस्त आभूषणों सहित ज्ञानी सिद्ध स्वरुपी शुद्ध ज्ञान मयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट लगाता, धारण करता है।

ज्ञानी को बाहर की क्रिया अपवाद मार्ग का या उत्सर्ग मार्ग का आग्रह नहीं होता, और न बाह्य में भेष को कल्याणकारी मानता, यह तो पुद्गल की पर्याय का परिणमन है। जो तत् समय की योग्यतानुसार स्वयं परिणमित होती है, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके, निर्विकल्प - निजानन्द की दशा बने, उस मार्ग को ग्रहण करते हैं। सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ते, साधु सहज सामान्य दशा है, यदि विकल्प

करके बनाये रखना पड़े, तो वह सहज दशा ही नहीं है।

अन्तर शोधन द्वारा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता - क्योंकि जहां पर्याय में शुद्धि आती है, आत्म स्वरुप में लीनता रूप पुरुषार्थ काम करता है। वहां बाह्य दशा तो सहज ही बनी रहती है।

साधक दशा में शुभाशुभ भाव बीच में आते हैं। परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता - साफ करता जाता है, अपने ध्रुव स्वभाव का लक्ष्य नहीं छोड़ता। ज्ञानी को दृष्टि अपेक्षा से चैतन्य एवं राग की अत्यन्त भिन्नता भासती है - यद्यपि वह ज्ञान में जानता है कि राग चैतन्य की पर्याय में होता है, परन्तु वह उसका भी ज्ञायक रहता हैं।

बाह्य क्रिया में आत्मिक आनन्द नहीं है। आत्मिक आनन्द तो अन्तर में ही भरा है, जो ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द अमृत सरोवर में डुबकी लगाते हैं, उसमें गहरे - गहरे उतरते हैं, उन्हें फिर बाहर आना अच्छा नहीं लगता, पुसाता नहीं। मजबूरी - पुरुषार्थ की आसक्ति के कारण बाहर आना पड़ता है, तो ज्ञान -ध्यान में ही लीन रहते हैं। संसारी प्रपंच सामाजिक व्यवहार - शिष्य आदि का विकल्प फिर पुसाता नहीं है। वह तो प्रमत्त - अप्रमत्त स्थिति का झूला झूलते हैं। अन्दर जायें तो अतीन्द्रिय आनन्द - परमानन्द में मगन होते हैं, और बाहर आयें तो तत्व चिन्तन कर उसी आनन्द को बार - बार ज्ञानानुभूति में लेते हैं।

साधक दशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्य से तो परिपूर्ण शुद्ध हैं ही, परन्तु पर्याय में भी शुद्धि प्रगट होकर पर्याय भी कृत्य - कृत्य हो रही है।

ज्ञानी ऐसे निज चैतन्य स्वरुप शुद्ध स्वभाव रूपी धर्म के वस्त्र पहिनता है। रत्नत्रय के आभूषण धारण करता है। समता भावमयी जिन मुद्रा रूप मुद्रिका धारण करता है, तथा ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट बांधता है और मुक्ति श्री से मिलने परमात्मा का दर्शन करने के लिये तैयार होता है।

अज्ञानी जीव को अनादि काल से विभाव का अभ्यास है उसी रूप ढलता रहता है। ज्ञानी को स्वभाव का अभ्यास वर्तता है। स्वयं ने अपनी सहज दशा प्राप्त की है।

विभावों में और पंच परावर्तन रुप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव में

कहीं विश्रांति नहीं है। अपना चैतन्य गृह - चैत्यालय ही सच्चा विश्रांति गृह है। ज्ञानी इसी में प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं।

सम्यक्दर्शन होते ही जीव - चैत्यालय रूप जिन मन्दिर का स्वामी बन गया, वह अपने जिन मन्दिर चैत्यालय में ही निवास करता है। तीव्र पुरुषार्थी को अस्थिरता रूप कचरा निकालने में कम समय लगता है। मंद पुरुषार्थी को अधिक समय लगता है, परन्तु दोनों ही अल्प - अधिक समय में कचरा निकाल कर स्वयं जिनेन्द्र परमात्मा बनेंगे।

ज्ञानी ने शुद्ध ज्ञान के जल में स्नान कर मिथ्यात्व , शल्य , राग, द्वेष, अनन्तानुबंधी कषाय आदि समस्त दोषों को प्रक्षालित अर्थात् धोकर साफ कर दिया है, तथा आध्यात्मिक शुद्ध स्वभाव दश लक्षण धर्म के वस्त्र, रत्नत्रय के आभूषण, वीतराग दशा रुप समता मयी मुद्रिका धारण कर ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट बांध लिया है। समस्त पाप आरम्भ परिग्रह को त्याग कर ज्ञानी साधु पद पर स्थित हो गया है, और निज शुद्धात्म देव के दर्शन करने हृदय उल्हस रहा है, भीतर निर्विकल्प निजानन्द में लीन रहने के लिये छटपटा रहा है। इसलिये मन बुद्धि आदि के समस्त विकल्पों को तोड़कर वीतरागी संयमी ज्ञानी अपने अन्तरंग के चैत्यालय में निज शुद्धात्म देव का दर्शन करने को तैयार हुआ है। ज्ञान की शुद्धि पूर्वक वस्तु स्वरुप का निर्णय किया - पर्याय में शुद्धि आई, पात्रता बढ़ी, बाह्य कर्मोदय संयोग की अनुकूलता मिलने पर यह स्थिति बन गई , पर अभी निज शुद्धात्म देव के दर्शन करने के लिये दृष्टि की शुद्धि भी आवश्यक है। जब तक शुद्ध दृष्टि न होगी - परमात्म स्वरुप अनुभूति में कैसे आयेगा ? अन्तर तल में उतरने के लिये दृष्टि की पवित्रता - शुद्धि भी आवश्यक है, जिससे वह अपने परमात्मा को स्पष्ट देख सके।

प्रश्न - दृष्टि की शुद्धि का प्रयोजन क्या है ?

समाधान - जब जीव की पात्रता पकती है। करण लब्धि पूर्वक काललब्धि आती है, श्रद्धा गुण की निर्मल पर्याय से मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय का उपशम- क्षय- क्षयोपशम होने पर जीव को अपने सिद्ध स्वरुप परमात्म तत्व की अनुभूति होती है। इसी को सम्यक्दर्शन कहते हैं। सम्यक्दर्शन होने के बाद पच्चीस मल दोषों

के दूर होने से सम्यक्त्व की शुद्धि होती है, जिससे मैं आत्मा - शुद्धात्मा - परमात्मा हूँ यह शरीरादि मैं नहीं हूँ, ये मेरे नहीं है। ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान रुप बोध हो जाता है। मुझे सम्यक्दर्शन हो गया इसका पक्का निर्णय हो जाता है यही सम्यक्त्व की शुद्धि है। अब चेतना का दर्शन - ज्ञान रुप उपयोग जो अभी तक शरीरादि कर्मों में ही एकमेक था - इनसे भिन्न हो जाता है, पर अनादि अज्ञानी होने से शरीरादि संयोग और शुभाशुभ भाव यह क्या हैं ? कहां से होते हैं ? कौन कर्त्ता है ? आदि अज्ञान जनित भ्रम रहता है, जिसको सद्गुरु व जिनवाणी के माध्यम से अपनी बुद्धि पूर्वक अनुभव करता हुआ ज्ञान की शुद्धि करता है, और जब सब संशय - विभ्रम - विमोह दूर हो जाते हैं तब सम्यक् ज्ञान ज्योति प्रगट होती है। यही ज्ञान की शुद्धि है। इसके होने पर एकत्व - अपनत्व कर्तृत्व भाव बिला जाते हैं। ज्ञायक स्वरुप प्रगट हो जाता है। यही समयसार रुप ज्ञान समुच्चयसार है। यही ज्ञानी का ज्ञान में स्नान और प्रक्षालन करने की सार रुप स्थिति है इसी को सम्यक्दृष्टि ज्ञानी कहते हैं। अब किसी भी क्रिया - भाव - पर्याय में एकत्व अपनत्व - कर्तृत्व नहीं रहा, मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा और एक - एक समय की चलने वाली पर्याय तथा पूरे जगत का त्रिकालवर्त्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित - अटल है, ऐसा अनुभूतियुत निर्णय स्वीकारता में आ जाता है। ध्रुव स्वभाव की साधना - ज्ञानोपयोग करने से पर्याय में शुद्धि आती है। कर्मोदय बदलते हैं। कर्मोदय की अनुकूलता मिलने पर वह आगे बढ़ता है। अर्थात् दश धर्म के वस्त्र, रत्नत्रय के आभूषण - समता भावमयी जिन मुद्रा धारण कर ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट बांधता है, और निज परमात्मा के दर्शन करने अर्थात् निज स्वभाव ममल भाव में रहने की तैयारी करता है। यहां दर्शन उपयोग की शुद्धि आवश्यक है। अभी तक ज्ञानोपयोग की शुद्धि हुई जो विकल्प रहित - ज्ञायक भावमय हो गया। अब दर्शन उपयोग में जो पर्याय पर भाव कर्म संयोग संसार आदि दिखाई देते हैं, इनमें न उलझें - चक्षु - अचक्षु दर्शन शुद्ध होवें, जिससे निरन्तर अपना शुद्ध चैतन्य शुद्धात्म तत्व ही दिखे यह दृष्टि की शुद्धि हैं और इसके होने पर

ही ध्यान - समाधि की स्थिति बनती है। जिससे आगे चलकर श्रेणी मांडकर केवलज्ञान अरिहन्त पद प्रगट होता है।

प्रश्न - यह शुद्ध दृष्टि कैसी होती है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१७)

दिस्टतं सुद्ध दिस्टी च, मिथ्यादिस्टी च तिक्तयं।
असत्यं अनृतं न दिस्टंते, अचेत दिस्टिन दीयते ॥१७॥

अन्वयार्थ - (दिस्टतं) देखते हैं (सुद्ध दिस्टी) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, जिनकी दृष्टि शुद्ध हो गई है वह अपने ध्रुव स्वभाव शुद्धात्म तत्व को देखते हैं (च) और (मिथ्यादृष्टि) मिथ्या दृष्टि-पर की तरफ देखना (च) और (तिक्तयं) छूट गया है, (असत्यं) जो झूठा असत् (अनृत) क्षण भंगुर नाशवान है (न दिस्टंते) नहीं देखते (अचेत) पुद्गल, जड़ पर वस्तु (दिस्टि न दीयते) दृष्टि ही नहीं देते अर्थात् उस तरफ देखते ही नहीं हैं।

विशेषार्थ - ध्रुव स्वभाव के आराधक ज्ञानी, शुद्ध दृष्टि से निज शुद्धात्म स्वरूप को देखते हैं, जिन्हें आत्मानुभूति सहित सम्यक् ज्ञान हुआ है तथा मिथ्यात्व की दृष्टि छूट गई है अर्थात् पर की तरफ देखने का भाव ही नहीं है, पर का महत्व ही खत्म हो गया है। वे हमेशा ज्ञान स्वरूप में निमग्न रहते हुये - विनाशीक झूठी असत् अनृत पर वस्तुओं और अन्तरंग में चलने वाले शुभाशुभ विकारी भावों को नहीं देखते तथा शरीर आदि अचेतन पर पदार्थों में भी दृष्टि नहीं लगाते, उस तरफ ध्यान ही नहीं देते। वे ज्ञानी शुद्ध दृष्टि के धारी ध्रुव स्वभाव के साधक निज परमात्मा के दर्शन करने वाले हैं।

ज्ञानी की दृष्टि अखंड चैतन्य में भेद नहीं करती, साथ में रहने वाला ज्ञान विवेक करता है कि यह चैतन्य के भाव हैं, यह पर भाव आदि हैं, शुद्ध दृष्टि अखंड चैतन्य मय समाहित होती है वहां पर भेद ही नहीं है कि यह द्रव्य है और यह पर्याय है वह तो स्वयं प्रभुता सम्पन्न परमात्मा है।

'' पर पर्जय हो दिस्टि न देई सो ममल सुभाए''

जिसने अतीन्द्रिय आनन्द अमृत रस का स्वाद चख लिया हो, उसे

राग रुप जहर नहीं पुसाता, वह परिणति में विभाव से दूर भागता है। शुद्ध दृष्टि होने पर ज्ञानी का उपयोग बाहर रहे तब भी दृष्टि तो सदा अंत- स्थल पर ही लगी रहती है। बाह्य में एकमेक हुआ दिखाई देवे तब भी वह दृष्टि अपेक्षा से अपने शुद्धात्म स्वरुप से बाहर निकलता ही नहीं है। यह शुद्ध दृष्टि की विशेषता है और जहां दर्शन और ज्ञान दोनों एक होकर अड़तालीस मिनिट स्वरुप में एकाग्र हुये वहां केवल ज्ञान प्रगट हो जाता है।

साधक दशा तो अधूरी है, साधक को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो और चैतन्य आनन्द धाम में पूर्ण रुप से सदा के लिये विराजमान न हो जाये तब तक पुरुषार्थ की धारा तो उग्र ही होती जाती है।

ज्ञानी को ऐसी ही भावना होती है कि उसका वश चले, पुरुषार्थ काम करे, तो वह अपने में लीन होकर केवल ज्ञान प्राप्त कर ले, इतनी छटपटाहट उत्साह वर्तता है और इसी भावना से अन्तर में अभय रहते हैं किसी से डरते नहीं हैं स्वभाव में सुभट हैं। किसी कर्मोदय उपसर्ग का भय नहीं है, दृष्टि तो अन्तर में है, चारित्र में अपूर्णता है।

प्रश्न - जब ज्ञान की शुद्धि हो गई, और दृष्टि की शुद्धि हो गई सम्यक्दर्शन है ही फिर चारित्र में अपूर्णता क्यों है - कैसी है ?

समाधान - द्रव्य तो स्वभाव से त्रिकाल शुद्ध ही है, गुण भी शुद्ध हैं, मात्र पर्याय में अशुद्धि है और उसमें निमित्त कारण अज्ञान जनित पूर्व कर्म बन्धोदय है। ज्ञानी ने भेद ज्ञान द्वारा निज पर के स्वरुप को यथार्थ जान लिया है, द्रव्य पर्याय के स्वरुप को भी जानता है, भेद ज्ञान तत्व निर्णय द्वारा ज्ञान की शुद्धि कर ली है, और वस्तु स्वरुप से दृष्टि भी शुद्ध हो गई, अब ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग में कोई भ्रम भ्रांति नहीं रही। पर पर्याय के प्रति कोई आकर्षण, राग द्वेष नहीं रहा। **परन्तु जब तक पर्याय में अशुद्धि है यही चारित्र की अपूर्णता है पर्याय की पूर्ण शुद्धता होना ही केवल ज्ञान,अरिहन्त पद है।** जहाँ जीव द्रव्य गुण पर्याय सहित परिपूर्ण शुद्ध हो जाता है। पौद्गलिक शरीरादि कर्मों का संयोग छूटने पर सिद्ध हो जाता है। इस चारित्र की अपूर्णता का कारण पर्याय की अशुद्धता है। उसका निमित्त कर्म बन्धोदय है। अब ज्ञानी का जितना पुरुषार्थ काम करता है अर्थात् शुद्धोपयोग होता है उतनी पर्याय में शुद्धि होती है। इसी से पूर्व कर्म बन्धोदय

निर्जरित क्षय होते जाते हैं। जैसी पात्रता बढ़ती है, वैसे ही मुक्ति की ओर अग्रसर होता जाता है, इसी को सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न - इसके लिए ज्ञानी को क्या पुरुषार्थ करना पड़ता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१८)

दिस्टतं सुद्ध समयं च, संमिक्तं सुद्धं धुवं।
न्यानं मयं च संपूरनं, ममल दिस्टी सदा बुधै ॥१८॥

अन्वयार्थ - (दिस्टतं) देखता है(शुद्ध समयं) शुद्धात्म स्वरुप को (च) और (संमिक्तं) सम्यक्त्व(शुद्धं) शुद्ध है (धुवं) निश्चित, अटल ध्रुव धाम है। (न्यानं मयं) जो ज्ञान मयी, ज्ञान मात्र (च) और (संपूरनं) परिपूर्ण है (ममल दिस्टी) ममल, शुद्ध, सारे रागादि मलों से मुक्त, परम शुद्ध दृष्टि (सदा) सदैव, हमेशा, निरन्तर (बुधै) ज्ञानी।

विशेषार्थ - ज्ञानी शुद्ध स्व समय निज शुद्धात्म स्वरुप निर्विकार स्वभाव को देखते हैं। जो सम्यक्त्व से शुद्ध तथा समस्त कर्म मलों से रहित परिपूर्ण शुद्ध ज्ञानमयी-ध्रुव धाम है। इसी शुद्ध चिद्रूपी ममल स्वभाव में ज्ञानी अपने उपयोग को लगा कर चैतन्य चमत्कार मयी सदैव शुद्ध समयसार निज ममल स्वभाव को अनुभवते - देखते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष स्व संवेदन करते हैं। उसी में लीन रहते हैं यही ज्ञानी का पुरुषार्थ है, जो शुद्धोपयोग कहलाता है।

जब जीव निज ज्ञानानन्द स्वभाव का अनुभव करने में समर्थ हुआ, अर्थात् सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान रुप समयसार मय हो गया, तब से समस्त जगत का साक्षी हो जाता है। परवस्तु अर्थात् शरीरादि बाह्य जगत तो पर है ही, अपनी एक समय की चलने वाली पर्याय भी पर है भिन्न है , इससे अपनत्व कर्तृत्वभाव छूटने से वह उसका साक्षी हो गया।

पर पर्याय से एकत्व भाव का छूटना सम्यग्दर्शन और - अपनत्व कर्तृत्व भाव का छूटना ही सम्यग्ज्ञान है।

जब से ध्रुव को ध्यान में लेकर आत्म अनुभव हुआ - तब से वह जीव पूर्णानन्द स्वरुप को उपादेय जानने से रागादि रुप उठने वाले विकल्पों के प्रति उदासीन रहता है।

दृष्टि, स्वभाव रुप परिणत होना, पर की रुचि छूटकर निज शुद्धात्म स्वरुप ममल स्वभाव की रुचि हो जाना ही शुद्ध दृष्टि है।

रुचियं ममल सहावं, संसारे तरण मुक्ति गमनं च ॥

रुचि अनुगामी पुरुषार्थ होता है। सम्यक् ज्ञानी का पुरुषार्थ जाग जाता है, पांच समवाय का ज्ञाता ज्ञानी अपना पुरुषार्थ करता है, और जानता है कि सम्यक् चारित्र केवल ज्ञान आदि जिस समय प्रगट होने वाले हैं उसी समय प्रगट होंगे, इसलिये उसे कोई अधीरता नहीं होती, समता भाव से अपना काम अपने में करता जाता है।

ज्ञानी की चौथे - पांचवे गुणस्थान में शुद्ध दृष्टि होती है, पर शुद्धोपयोग सदा नहीं होता - स्वरुप में लीन होने पर बुद्धि पूर्वक राग का अभाव होना ही शुद्धोपयोग है।

ज्ञानी, पुरुषार्थ गुण को अलग करके कार्य नहीं करते, ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय से सहज शुद्धोपयोग होता जाता है।

मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ , ऐसे स्वभाव की श्रद्धा ज्ञान पूर्वक जितना वीतराग भाव हुआ उतना शुद्धोपयोग है, उससे हटे या उसी समय जो रागांश है वह आश्रव है।

ज्ञान का मार्ग कृपाण की धारा - बड़ा सूक्ष्म निरालम्ब का मार्ग है। निर्विकल्प दशा में यह ध्यान है, यह ध्येय है ऐसे विकल्प टूट जाते हैं। वहां कोई भेद रहता ही नहीं है।

जिन परम पैनी सुबुद्धि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तें, निज भाव को न्यारा किया ॥
निज माहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ॥
जहां ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिदभाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न, शुद्धोपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहां दृग - ज्ञान - व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥
परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखे।
दृग, ज्ञान, सुख, बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखे ॥

मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तें।
चित पिंड चंड अखंड सुगुण करंड, च्युत पुनि कलनि तें॥
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र कै नाहीं कह्यो॥
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलि ज्ञान करि, भवि लोक को शिव मग कह्यो॥

स्वरुप में स्थिर हुये ज्ञानी ही साक्षात अतीन्द्रिय आनन्दामृत का पान करते हैं। द्रव्य दृष्टि सब प्रकार की पर्याय को दूर रखकर एक निरपेक्ष, सामान्य स्वरुप को ग्रहण करती है। द्रव्य दृष्टि के विषय में गुण भेद भी नहीं होते, वही शुद्ध दृष्टि है।

शुद्ध दृष्टि के साथ वर्तता हुआ ज्ञान, वस्तु में विद्यमान गुणों तथा पर्यायों को अभेद तथा भेद को विविध प्रकार से जानता है। ऐसा होने पर भी शुद्ध दृष्टिकहीं उलझती - अटकती नहीं है, जब तक उलझती, अटकती है, तब तक शुद्ध दृष्टि नहीं है। शुद्ध दृष्टि तो एक मात्र ध्रुव शुद्धात्मा पर ही रहती है।

प्रश्न - ज्ञानी अभी शरीरादि संयोग सहित संसार में है, और यह सब देखने - जानने में आता है, फिर इसमें शुद्ध दृष्टि क्या करते हैं?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (१९) (२०)

लोक मूढ़ं न दिस्टन्ते, देव पाषंड न दिस्टते।
अनायतन मद अस्टं च, संका अस्ट न दिस्टते॥१९॥
दिस्टतं सुद्ध पदं सार्ध, दर्सनं मल विमुक्तयं।
न्यानं मयं सुद्ध संमिक्तं, पंडितो दिस्टि सदा बुधै॥२०॥

अन्वयार्थ - (लोकमूढ़ं) लोक मूढ़ता (न दिस्टंते) नहीं देखते (देव पाषंड) देव मूढ़ता - पाखंड मूढ़ता (न दिस्टते) नहीं देखते (अनायतन) छैः अनायतन (मद अस्टं) आठ मद (च) और (संका अस्ट) शंकादि आठ दोष (न दिस्टते) नहीं देखते।

(दिस्टतं) देखते हैं (सुद्ध पदं) शुद्ध पद सिद्ध स्वरुप ध्रुव तत्व को (सार्धं)साधना करते हैं (दर्सनं) दर्शन उपयोग (मल विमुक्तयं) मल दोषों से विमुक्त - रहित होता है (न्यानं मयं) ज्ञान सहित (शुद्ध संमिक्तं) शुद्ध

सम्यक्त्व के धारी (पंडितो) पंडित ज्ञानी - जन (दिस्टी) दृष्टि (सदा) हमेशा-निरन्तर (बुधै) ज्ञान मय शुद्ध रहती है।

विशेषार्थ- सम्यग्दृष्टि ज्ञानी लोक मूढ़ता को नहीं देखते तथा देव मूढ़ता की झूठी मान्यता को त्याग देते हैं, जो पाखंडी गुरु संसार में प्रपंच को धर्म कहते हैं, ज्ञानी इस पाखंड मूढ़ता को भी नहीं देखते उनके बताये हुये कुमार्ग में नहीं जाते।

कुगुरु कुदेवादि छह अनायतन और ज्ञानादि आठ मदों का ज्ञानी को रंच मात्र भी अनुराग नहीं होता, तथा शंका आदि आठ दोषों को भी वे नहीं देखते।

ज्ञानी सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों से रहित निर्दोष दृष्टि के धारी अपने में हमेशा जाग्रत रहते हैं। ज्ञानी साधक चैतन्य मयी निज पद को देखते हैं, जो त्रिकाल शुद्ध सिद्ध स्वभाव का धारी निजानन्द मयी चित्स्वरुप है , ज्ञानी हमेशा अपने शुद्ध चिद्रूप स्वभाव की साधना करते हैं, जिससे दर्शनोपयोग समस्त मलों से रहित शुद्ध होता है। जिसमें निरन्तर निज शुद्धात्म स्वरुप अखंड ध्रुव स्वभाव प्रकाशित रहता है।

जिसको द्रव्य दृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, अर्थात् शुद्ध दृष्टि हो जाती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भाषित नहीं होता, भेद ज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। दिन की जाग्रत दशा में तो ज्ञायक निराला ही रहता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है, परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान - वैराग्य शक्ति अनुपम - अद्भुत रहती है। मैं तो ज्ञायक - ज्ञायक - ज्ञायक ही हूं - निशंक ज्ञायक हूँ। विभाव और मैं कभी एक नहीं हुये, ज्ञायक पृथक ही है। सारा ब्रह्मांड पलट जाये तथापि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा ज्ञायक स्वभावी पृथक ही हूं - ऐसा दृढ़ अटल - अचल निर्णय रहता है, स्वरुप अनुभव में अत्यन्त निः शंकता वर्तती है।

ज्ञानी - ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष - विशेष समाधि सुख प्रगट करने को उत्सुक है, अर्थात् निज परमात्म स्वरुप में लीन एकाग्र होकर उसी में डूबे रहना चाहते हैं। स्वरुप में कब ऐसी स्थिरता

होगी, कब श्रेणी माड़कर परमानन्द मयी परमात्म पद केवल ज्ञान प्रगट होगा, कब ऐसा परम ध्यान होगा, कि आत्मा शाश्वत रुप से अपने ध्रुव धाम में जम जायेगा, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट होगा इस भावना को ज्ञानी साधक निरन्तर भाते हैं।

प्रश्न - यहां शुद्ध दृष्टि में पच्चीस मल दोषों का क्या काम है, यह तो सम्यक्त्व की शुद्धि होने पर ही छूट गये, ज्ञान के द्वारा सब साफ हो गये, फिर यहां पुनः किस अपेक्षा से कहे गये हैं ?

समाधान - यहां चारित्र की अपेक्षा पूर्णतः विसर्जन होते हैं, कारण कि अभी शरीरादि संयोग होने, संसार में रहने से चक्षु - अचक्षु दर्शन द्वारा दिखाई तो देते हैं, रागांश होने से दोष भी लगता है। संसार का - पर का - पर्याय का जब तक महत्व आकर्षण है, तब तक यह दोष रहते हैं। श्रद्धान - ज्ञान पूर्वक परिमार्जन होने के बाद भी जब -तक दृष्टि की शुद्धि नहीं होती तब - तक उधर उपयोग जाता ही है। दृष्टि की शुद्धि होने से दृष्टि में संसार का - पर का पर्याय का - महत्व आकर्षण जगत की सत्ता ही तिरोहित हो जाती है। तभी यथार्थता यह दोष बिलाते हैं। जब दृष्टि में शुद्ध वस्तु स्वरुप दिखाई देने लगता है कि यह शुद्ध जीवास्तिकाय रुप मैं स्वयं हूं और ऐसे ही समस्त जीव हैं, तथा यह सामने शुद्ध - पुद्गल परमाणु रुप ही दिखाई देता है। पुद्गल की अशुद्ध पर्याय - स्कन्ध रुप जगत ही दृष्टि की अशुद्धि, भ्रांति है जिसके मिटने पर शुद्ध दृष्टि होती है।

प्रश्न - ऐसी शुद्ध दृष्टि तो क्षायिक सम्यक्त्व होने पर ही हो सकती है। क्या यह पंडित ज्ञानी क्षायिक सम्यक्दृष्टि निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु है ?

समाधान - ज्ञानी क्या है ? यह तो वही जाने, पर जब तक यह स्थिति नहीं बनती - तब तक साधना करता है। ज्ञानी को किसी प्रकार का विकल्प, उकताहट अधीरता नहीं है। वह सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं चलता। जैसे सौ डिग्री पानी गरम होवे तो ही भाप बनता है। इसी प्रकार ज्ञान मार्ग में भी निन्यानवे टंच नहीं चलता, पूर्ण शुद्ध सिद्ध परमात्मा होता है, तो जो विधान है वह उसका पूर्णतः पालन करता है, और अपनी पात्रतानुसार चलता है।

अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि समृद्धि से भरे निज चैतन्य महल चैत्यालय को ताले लगा दिये हैं, और स्वयं बाहर

ढूंढता भटकता रहता है, ज्ञान बाहर से ढूंढता है, आनन्द बाहर से ढूंढता है सब कुछ बाहर से ढूंढता है।

स्वयं भगवान होने पर भी भीख मांगता रहता है ।

ज्ञानी ने चैत्यालय महल के ताले खोल लिये हैं, अन्तर में ज्ञान आनन्द आदि की अटूट समृद्धि देखकर और थोड़ी भोगकर उसी में निरन्तर रत रहना चाहता है। इसी चैतन्य महल - चैत्यालय में विराजमान निज चैतन्य प्रभु परमात्मा के दर्शन करने के लिये शीघ्र ही अन्तर प्रवेश करता है।

इस प्रकार पंडित पूजा करने के लिये ज्ञान स्नान - प्रक्षालन कर वस्त्राभूषण धारणकर शुद्ध दृष्टि होकर परमात्मा के दर्शन करने के लिये निज मन मन्दिर - चैत्यालय में प्रवेश करता है। जहां वह अपने परमात्मा की आराधना स्तुति - पूजन करेगा।

प्रश्न - यह पंडित ज्ञानी कहां - किसके दर्शन करता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (२१)

वेदिका अग्र स्थिरश्चैव, वेदतं निरग्रंथं ध्रुवं।
त्रिलोकं समयं शुद्धं, वेद वेदन्ति पंडिता ॥२१॥

अन्वयार्थ - (वेदिका) वेदी - जिस पर वेद (भगवान की वाणी) विराजमान की जाती है, वेदिका जहां परमात्मा निज स्वरुप में स्थिर रहते हैं (अग्र) आगे स्थिरश्चैव) स्वस्थ्य, सावधान, स्थिर होकर (वेदतं) अनुभव, अनुभूति करते, दर्शन करते हैं, (निर्ग्रंथ) जो समस्त आरम्भ परिग्रह आदि मद मिथ्यात्व के बंधनों से रहित निर्ग्रन्थ स्वरुप (ध्रुव) ध्रुव है (त्रिलोकं) तीन लोक में (समयं सुद्धं) शुद्ध सम- निज शुद्धात्म स्वरुप शुद्ध समयसार। (वेद) भगवत्स्वरुप वाणी (वेदन्ति) अनुभूति करते हैं (पंडिता) पंडित, ज्ञानी जन।

विशेषार्थ - अपने शुद्ध स्वभाव की वेदिका के आगे स्थिर होकर ज्ञानी, निर्ग्रंथ चिद्रूप स्वभाव का अनुभव करते हैं। यह अनन्त चतुष्टयमयी परम ध्रुव स्वभाव निज शुद्धात्मा ही सच्चा देव परमात्मा है, जो तीनों लोक में त्रिकाल शुद्ध स्व - समय निज शुद्धात्मा चैतन्य भगवान देह देवालय में ही रहता है।

ज्ञानी साधक निर्विकल्प होकर शुद्धात्मा की अनुभूति करते हैं। यही वस्तुतः सच्चे देव का दर्शन है। देव दर्शन के महात्म्य के बारे में कहा भी है-

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं - पाप नाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्॥
चिदानन्दैक रुपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः॥
जन्म जन्म कृतं पापं, जन्म कोटि मुपार्जितं।
जन्म मृत्यु जरा रोगं, हन्यते जिन दर्शनात्॥

इसीलिये तारण पंथी जब दर्शन करने के लिये खड़ा होता है तो अपने आप नेत्र बन्द हो जाते हैं। अध्यात्मवादी साधक कोई भी हो अपने शुद्ध स्वभाव के आलम्बन पूर्वक अपने स्वरूप का स्मरण दर्शन करता है, इसके नेत्र बन्द ही रहते हैं, क्योंकि परमात्मा का दर्शन, पर में या जड़ में नहीं होता- परमात्मा तो अपने देह - देवालय में विराजमान है, जिसकी दृष्टि उस पर जाती है, उसे ही निज परमात्मा के दर्शन होते हैं।

पर - परमात्मा के दर्शन न तो कभी किसी को हुये और न हो सकते - क्योंकि परमात्मा अव्यक्त, अवक्तव्य, अगोचर, अरुपी, चैतन्य ज्योति ज्ञान स्वरुप निज अनुभूति गम्य ही है।

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरुप की ओर ढल रहा है। ज्ञानी निज स्वरुप में परिपूर्ण रुप से स्थिर होने को तड़फता है। जैसे पूर्ण मासी के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है , उसी प्रकार ज्ञानी साधक को पूर्ण चैतन्य चन्द्र के एकाग्र अवलोकन, दर्शन करने से आत्म समुद्र में ज्वार उछाल आता है।

वैराग्य का ज्वार उमंग उत्साह उछाल आता है, आनन्द का ज्वार आता है। सर्वगुण पर्याय का यथा सम्भव ज्वार आता है, यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है, पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरता पूर्वक निहारने दर्शन करने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है सब कुछ उछलता है, ऐसा दर्शन ही जन्म - जन्म के पाप कर्मों को क्षण भर में क्षय करता है।

धर्मी जीव को रोग की वेदना नहीं होती - मृत्यु का भय नहीं होता क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय भी वह आत्मा में शान्ति प्राप्त कर लेता है। जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा, स्वयं शाश्वत ध्रुव तत्व अनन्त सुख से भरपूर हूँ, ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रिय सुखों को नाशवन्त और भविष्य में दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो, और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो। दुर्धर तप करता हो उपसर्ग - परिषह सहता हो तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता, संसारी स्वर्गादि का कारण होता है। सम्यक्दर्शन होने के पश्चात आत्म-स्थिरता बढ़ते - बढ़ते बारम्बार स्वरुप लीनता आत्मदर्शन होता रहे, ऐसी दशा हो - तब मुनिपना, साधु पद होता है।

साधु को बाहर का कुछ नहीं चाहिए, बाह्य में एक मात्र शरीर का संयोग है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा - बड़ी निस्पृह दशा है, आत्मा की ही लगन लगी है। संसार की विकथाओं से विरक्त- आर्त-रौद्र ध्यानों से मुक्त वे चलते - फिरते सिद्ध समान हैं।

साधक की अभी स्वानुभूति पूर्ण स्थिरता नहीं है। परन्तु दृष्टि में परिपूर्ण शुद्ध आत्मा है। ज्ञान परिणति, द्रव्य तथा पर्याय को जानती है परन्तु पर्याय पर जोर नहीं है दृष्टि में अकेला स्व की ओर का द्रव्य स्वभाव का ही बल रहता है। द्रव्य तो स्वभाव से अनादि अनन्त है, जो कभी पलटता नहीं है, बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करने, उसका दर्शन करने से अपनी विभूति परमात्म स्वरुप का प्रगट अनुभव होता है।

शुद्ध निज स्वभाव की वेदिकाग्र थिर होके,
ज्ञानी अनुभवते, चिद्रूप निरग्रंथ है।
यही परम ध्रौव्य धाम - शुद्धातम देव जो,
सदा चतुष्टय मयी अनादि अनन्त है।
तीन लोक मांहि स्व समय शुद्ध है त्रिकाल,
देह देवालय में ही रहता भगवन्त है।
ज्ञानी अनुभूति करते निज शुद्धातम की,
यही देव दर्शन निश्चै तारण पंथ है।

(ब्र.बसंत)

यह दर्शन की विधि, स्थिति स्थायी हो जाये तो अड़तालीस मिनिट में केवल ज्ञान प्रगट हो जाता है, अभी स्थिरता न होने के कारण उस महा महिमावान परमात्म स्वरुप की महिमा, भक्ति, स्मरण, स्तुति करता है। उसी में रोम - रोम उल्लसित हो जाता है, जिससे आनन्द में गद्‌गद् होकर भक्ति भाव से भजन गाता नृत्य करने लगता है।

प्रश्न - यह पंडित ज्ञानी कैसी स्तुति - आराधना करता है इससे इतने आनन्द में रहता है ?

इसके समाधान में सद्‌गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (२२)

उच्चरनं ऊर्ध्व सुद्धं च, सुद्ध तत्वं च भावना।
पंडितो पूज आराध्यं, जिन समयं च पूजतं ॥२२॥

अन्वयार्थ - (उच्चरनं) उच्चारण करते हैं - स्तुति प्रार्थना आदि पढ़ते हैं (ऊर्ध्व सुद्धं) ऊर्ध्वगामी शुद्ध स्वभाव (च) और (शुद्ध तत्वं) शुद्धात्म तत्व - सत्स्वरुप (च) और (भावना) निरन्तर स्मरण करना, अन्तर लगन (पंडितो) पंडितों, ज्ञानी जनों (पूज आराध्यं) पूज्य आराध्य (जिन समयं) जिनेन्द्र परमात्मा शुद्धात्म स्वरूप (च) और (पूजतं) पूजते हैं- पूजा करना।

विशेषार्थ - ज्ञानी जन शुद्ध चिदानन्द मयी श्रेष्ठ ध्रुव स्वभाव का स्तुति पूर्वक उच्चारण करते हैं। हृदय में ध्रुव स्वभाव की धारणा को दृढ़ता से धारण कर शुद्ध तत्व की भावना भाते हैं। ज्ञानी का पूज्य आराध्य - निज शुद्धात्म स्वरुप ही होता है। अपने वीतराग स्व समय शुद्धात्म देव का चिन्तन - मनन करना, सच्चा आराधन और ध्रुव धाम का अनुभव करना सच्ची देव पूजा है, जो वर्तमान जीवन को आनन्द परमानन्द में बनाती है, और आगे स्वयं परमात्मा बनता है। इस प्रकार पंडित ज्ञानी संसार के जन्म - मरण के दुःखों से छुड़ाने वाली निवारण करने वाली यथार्थ - पूजा - आराधना करते हैं।

- ज्ञानी की स्तुति प्रार्थना -

ध्रुव तत्व शुद्धातम - तुमको लाखों प्रणाम ॥...
ध्रुव धाम के तुम हो वासी ।
तुम हो अजर, अमर, अविनाशी ॥

परम ब्रह्म परमातम, तुम को लाखों प्रणाम .....
अनन्त चतुष्टय के तुम धारी ।
तीन लोक से महिमा न्यारी ॥
सर्वज्ञ पूर्ण परमातम, तुमको लाखों प्रणाम .....
रत्नत्रयमयी - अरस - अरुपी ।
एक अखंड हो सिद्ध स्वरुपी ॥
ब्रह्मानन्द परमातम - तुमको लाखों प्रणाम .....
ज्ञानानन्द स्वभाव तुम्हारा ।
भाव क्रिया-पर्याय से न्यारा ॥
चिदानन्द ध्रुव आतम-तुमको लाखों प्रणाम
अशरीरी अविकार निरंजन ।
सब कर्मों से भिन्न भव भंजन ॥
सहजानन्द शुद्धातम- तुमको लाखों प्रणाम .....

सम्यक् दृष्टि ज्ञानी निरन्तर निर्विकल्प अनुभव में नहीं रह सकते इसलिये उन्हें भी भक्ति आदि का राग आता है। ज्ञानी को हेय उपादेय - इष्ट अनिष्ट का विवेक वर्तता है, तथा जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। कारण अपना शुद्धात्म - स्वरुप है उसका ही लक्ष्य उसी की आराधना, स्तुति की जा रही है, तो कार्य भी शुद्धात्म स्वरुप परमात्मा होगा। यदि पर का लक्ष्य जड़ की पूजा स्तुति होगी तो वह शुभ भावों की अपेक्षा पुन्य बन्ध का कारण हो सकती है, पर मूल में पर का आलम्बन - मिथ्यात्व और जड़ का आलम्बन गृहीत मिथ्यात्व घोर संसार के कारण हैं। इस बात का विवेक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को होता है।

निर्विकल्प आनन्द में ज्ञान पर्याय एकाग्र हो जाये, वह तो श्रेयस्कर इष्ट है ही, परन्तु जब निर्विकल्प आनन्द में न रह सके, तब ज्ञानानुभूति ज्ञानोपयोग, सत्संग, स्वाध्याय, तत्व चर्चा करना,यही शुभोपयोग है। विकथा आदि निन्दनीय प्रवृत्तियों में लगने से तो महान अनर्थ होता है।

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्म तत्व पर दृष्टि करने से उसी के आलम्बन से पूर्णता प्रगट होती है। इस अखंड तत्व का आलम्बन वही एक

अखंड परम पारिणामिक भाव का आलम्बन है। जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है। प्रत्येक समय प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मा ही मुख्य रहता है। विविध शुभ भाव आयें - तब भी कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं होता -वे भाव मुख्यता नहीं पाते।

ज्ञानी की दृष्टि तो संसार से छूटने की है अतः वह राग रहित निवृत्त स्वभाव की मुख्य भावना व आदर में सावधानी से प्रवृत्त रहता है। वह हमेशा शुद्धात्म - स्वरुप की भक्ति भावना करता है, और उसी रस में डूबा भजन गाता - आनन्द में नृत्य करता है।

-: भजन - आरती :-

ॐ जय आतम देवा, प्रभु शुद्धातम देवा।
तुम्हरे मनन करे से निशदिन, मिटते दुख छेवा॥
अगम अगोचर परम ब्रह्म तुम, शिवपुर के वासी- प्रभु-२
शुद्ध बुद्ध हो नित्य निरंजन, शाश्वत अविनाशी....ॐ जय ....
विष्णु बुद्ध महावीर प्रभु तुम, रत्नत्रय धारी - प्रभु २
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, जग के सुख कारी....ॐ जय....
ज्ञानानन्द स्वभावी हो तुम, निर्विकल्प ज्ञाता - प्रभु-२
तारण - तरण जिनेश्वर, परमानन्द दाता....ॐ जय आतम ...

ऐसी अपूर्व भक्ति और आनन्द में नृत्य करते - करते अपने में समाधिस्थ लीन हो जाता है। भगवान जिसके हृदय में विराजते हैं, उसका चैतन्य शरीर राग - द्वेष रुपी जंग से रहित हो जाता है। पाप - विषय - कषाय की प्रवृत्ति अपने आप छूट जाती है। वह निरावरण अखंड एक - अविनश्वर- शुद्ध - परम पारिणामिक भाव लक्षण निज परमात्म स्वरुप का ध्यान करता है और इसकी तन्मयता ही सच्ची देव पूजा है।

प्रश्न - ऐसे ज्ञान - ध्यान - भक्ति भाव पूजा से क्या लाभ मिलता है?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं.....

गाथा (२३)

पूजतं च जिनं उक्तं, पंडितो पूजतो सदा।
पूजतं सुद्ध सार्धं च, मुक्ति गमनं च कारनं ॥२३॥

अन्वयार्थ - (पूजतं) पूजा का स्वरुप (च) और (जिनं उक्तं) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है (पंडितो) पंडित ज्ञानी जन(पूजतो) सच्ची पूजा करते हैं (सदा) हमेशा सदैव (पूजतं) पूजा का स्वरुप (शुद्ध सार्धं) शुद्धात्म स्वरुप की साधना करना (च) और (मुक्ति गमनं) मोक्ष जाने - मोक्ष मार्ग - मुक्त होने (च) और (कारनं) कारण है।

विशेषार्थ - श्री जिनेन्द्र परमात्मा ने पूजा का जैसा स्वरुप कहा है पंडित ज्ञानी जन - हमेशा वैसी ही शुद्ध पूजा करते हैं। पूजा का स्वरुप निज शुद्धात्म स्वरुप की अनुभूति ज्ञान और उसी मय लीन रहना है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः ॥

यही मुक्त होने सिद्ध परम पद पाने का एक मात्र शुद्ध कारण है।ज्ञानी साधक और साधु निज शुद्धात्म स्वरुप की साधना करते हैं। अपने शुद्ध चिद्रूपी ध्रुव स्वभाव को देखते अनुभव करते हुये -निज स्वभाव में लीन होकर सिद्ध पद प्राप्त करते हैं। यही शुद्ध पूजा मुक्ति गमन का कारण है।

ज्ञानी धर्मात्मा को भगवान की पूजा - भक्ति आदि के भाव आते हैं। परन्तु उसकी दृष्टि राग रहित ज्ञायक स्वरुप - निज शुद्धात्मा पर पड़ी है। उसे जिनेन्द्र परमात्मा की वाणी का सत्य श्रद्धान है, कि अन्तर में निज चैतन्य स्वरुप भगवान आत्मा विराजमान है। इसी का श्रद्धान - ज्ञान - आराधन तद्रूप लीनता ही धर्म, धर्म मार्ग और मुक्ति है।

अन्तर में शुद्ध चिदानन्द स्वरुप को जानकर उसे प्रगट किये बिना जन्म - मरण का अन्त नहीं आयेगा। आत्मा का स्वभाव त्रैकालिक परम पारिणामिक भाव रुप है, उस स्वभाव को पकड़ने, उसी का स्मरण -ध्यान आराधन करने से ही मुक्ति मिलती है।

हे मोक्ष के अभिलाषी ! मोक्ष मार्ग तो सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्वरुप है। यह सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भाव रुप मोक्ष मार्ग अन्तर्मुख प्रयत्न द्वारा सधता है। ऐसा भगवान का उपदेश है, भगवान ने स्वयं प्रयत्न द्वारा मोक्ष मार्ग साधा है और उपदेश में भी यही कहा है कि मोक्ष का मार्ग प्रयत्न साध्य है, इसलिये तू सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भावों को ही मोक्ष का पंथ जानकर सर्व उद्यम द्वारा उसे अंगीकार कर, हे भाई ! सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भावों से रहित ऐसे द्रव्य लिंग से तुझे

क्या साध्य है, तथा ब्राह्य पर का आलम्बन मोक्ष मार्ग नहीं है। मोक्ष तो सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध भावों से ही साध्य है।

ज्ञान - दर्शन स्वभाव मात्र अभेद निज तत्व की दृष्टि करने पर उसमें नव तत्व रुप परिणमन तो है ही नहीं - चेतना स्वभाव मात्र ज्ञायक वस्तु में गुण भेद भी नहीं है इसलिये गुण भेद, या पर्याय भेद को अभूतार्थ, असत्य कह दिया है। दया दान पर की पूजा भक्ति का भाव तो राग है, वह लक्ष्य करने योग्य नहीं है परन्तु संवर निर्जरा रुप वीतराग निर्मल पर्याय भी लक्ष्य आश्रय करने योग्य नहीं है।

आत्मा का निश्चय सो सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान और आत्मा में निश्चल स्थिति सो सम्यग्चारित्र-ऐसे रत्नत्रय वह मोक्ष मार्ग है।

ज्ञानी के ज्ञान मार्ग की साधना, ज्ञान, ध्यान, भक्ति पूजा बड़ी अपूर्व परम तत्व की बात है। इसका साधक स्वयं परमात्मा बनता है।

एतत् संमिक्त पूजस्य, पूजा पूज्य समाचरेत्।
जो आतम भगवान पूजता, ज्ञानानन्द में रहता है।
स्वयं सिद्ध परमातम बनता, यह जिन आगम कहता है॥
जिनवाणी का सार यही है, बनना खुद भगवान है।
पूज्य समान आचरण ही, पूजा का सही विधान है॥
मैं आतम शुद्धातम हूँ, परमातम सिद्ध समान हूँ।
ज्ञेय मात्र से भिन्न सदा, मैं ज्ञायक ज्ञान महान हूँ॥
ज्ञानी पंडित उसी को कहते, जिसको सम्यक ज्ञान है।
पूज्य समान आचरण ही, पूजा का सही विधान है॥

ज्ञानी साधक समाधि परिणत है। वे ध्रुव तत्व शुद्धात्मा का आलम्बन लेकर, विशेष - विशेष समाधि सुख प्रगट करने को उत्सुक हैं। यही जैनागम में जिनेन्द्र परमात्मा द्वारा पूजा का विधान बताया है। इससे परम शान्ति का वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द होती जाती है। एक मात्र भगवान बनने की भावना होती है कि स्वरुप में कब ऐसी स्थिरता होगी जब श्रेणी (समाधि) लगाकर पूर्ण वीतराग दशा प्रगट होगी ?

कब स्वरुप में उग्र रमणता होगी और आत्मा का परिपूर्ण ज्ञान

स्वभाव केवल ज्ञान प्रगट होगा। उसके साधन रुप, ज्ञान, ध्यान भक्ति आराधना (पूजा) में तल्लीन रहते हैं। जिससे परिणाम में स्वयं आत्मा से परमात्मा - पूर्ण मुक्त शुद्ध सिद्ध होते हैं।

यही सच्ची पूजा हैजो आत्मा से परमात्मा बनाती है जिस पूजा से संसार में भटकना पड़े वह परमात्मा की सच्ची पूजा ही नहीं है।

ज्ञान, ध्यान, भक्ति, पूजा स्वयं के जीवन को श्रेष्ठ उत्कृष्ट बनाने के साधन हैं।

पूजा का अभिप्राय पूज्य सम, स्वयं पूज्य बन जाना है।
जो भी अपना इष्ट मानते, उसी इष्ट को पाना है॥

भक्ति अर्थात् भजना - किसे भजना ? अपने स्वरुप को भजना, मेरा स्वरुप निर्मल एवं निर्विकारी - सिद्ध जैसा है। उसकी यथार्थ प्रतीति करके उसे भजना वही निश्चय भक्ति है। और वही परमार्थ स्तुति है।

पूजा अर्थात पूजना, किसे पूजना ? अपने ध्रुव तत्व शुद्धात्म स्वरुप के आश्रय पर्याय की अशुद्धि को दूर कर परिपूर्ण शुद्ध करना ही सच्ची पूजा है, इसी से देवत्व पद प्रगट होता है। निचली भूमिका में देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति का भाव आये, वह व्यवहार है, शुभ राग है, पुण्य बंध का कारण संसार है। कोई कहेगा कि यह बात कठिन लगती है पर भाई स्वयं भगवान महावीर- अनन्त सिद्ध परमात्मा इसी विधि से भेदज्ञान पूर्वक तत्व श्रद्धान निज शुद्धात्मानुभूति करके स्वरुप में स्थिर होकर स्वरुप की निश्चय भक्ति करके मोक्ष गये हैं। वर्तमान में जा रहे हैं और भविष्य में इसी पूजा भक्ति विधान से मोक्ष जायेंगे, **एक होय त्रिकाल मां - परमार्थनो पंथ॥**

प्रश्न - जब जिनेन्द्र परमात्मा ने सच्ची पूजा निज स्वरुप रमणता बताई है और इसी से मुक्ति होती है, फिर व्यवहार में यह जो पूजा आदि का विधान चलता है, यह क्या है ? और इससे क्या होगा?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (२४)

अदेवं अन्यान मूढं च, अगुरं अपूज पूजतं।
मिथ्यातं सकल जानन्ते, पूजा संसार भाजनं॥२४॥

अन्वयार्थ - (अदेवं) अदेवों को अर्थात् चैतन्यता एवं देवत्व रहित जो जड़ अचेतन हैं (अन्यान) अज्ञानी (मूढं) मूढ़ता से ग्रसित (च) और (अगुरं) अगुरु अर्थात् जिसमें गुरुपना ही नहीं है (अपूज) अपूज्य हैं (पूजतं) पूजा करते हैं। (मिथ्यातं) मिथ्यात्व अर्थात् झूठी मान्यता, संसार का कारण (सकल) सब तरह से (जानन्ते) जानो - जानते हैं (पूजा) ऐसी पूजा (संसार भाजनं) संसार का पात्र बनाने वाली है।

विशेषार्थ - अदेव अर्थात् जड़ पाषाण आदि की मूर्ति तथा अज्ञानी और मूढ़ता से ग्रसित - चतुर्निकाय के देव जो कुदेव हैं और गुरुता से रहित अगुरु जो अपूज्य हैं। ऐसे कुदेव, अदेव, अगुरु, कुगुरु आदि की जो पूजा करते हैं। यह सब गृहीत, अगृहीत मिथ्यात्व जानो, संसारी कामना, वासना को लेकर अथवा अज्ञानता लोक मूढ़ता वश जो ऐसी अदेवादि की पूजा करते हैं। यह सब संसार का पात्र बनाने वाली है। अज्ञानी मूढ़ जीव - देवत्व रहित अचेतन अदेवों की पूजा करते हैं, तथा अज्ञानी अगुरु जो अपूज्य होते हैं, जो मूढ़ जीव उनकी पूजा सेवा भक्ति करते हैं वे दुर्गति के पात्र बनते हैं। ज्ञानी जानते हैं कि अदेव, अगुरु आदि की पूजा करना मिथ्यात्व है। जो अदेवादि की पूजा करते हैं, इष्ट मानते हैं वे अज्ञानी जीव संसार के पात्र बनते हैं। अर्थात् चार गति चौरासी लाख योनियों में अनन्त काल तक जन्म मरण के दुःख भोगते हैं। सच्ची (शुद्धात्म) देव पूजा संसार चक्र से छुड़ाकर मुक्ति देती, स्वयं परमात्मा बनाती है। और यह अदेवादि की पूजा, जीव को संसार का पात्र बनाने वाली होती है।

देव किन्तु देवत्व हीन जो, वे अदेव कहलाते हैं।
वही अगुरु जड़ जो गुरु बनकर, झूठा जाल बिछाते हैं॥
ऐसे इन अदेव अगुरों की, पूजा है मिथ्यात्व महान।
जो इनकी पूजा करते वे, भव - भव में फिरते अज्ञान॥

(चंचल जी)

धर्म भी ज्ञानी को होता है, व ऊँचे पुण्य भी ज्ञानी को बंधते हैं। अज्ञानी को आत्मा के स्वभाव का भान नहीं है। धर्म का पता ही नहीं है देव, गुरु, धर्म का स्वरूप ही नहीं जानता, इसीलिये उसके धर्म भी नहीं और ऊँचा पुण्य भी नहीं होता।

तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती पद आदि पद सम्यग्दृष्टि जीवों को ही प्राप्त होते हैं। कारण कि ज्ञानी को यह भान है कि एक मेरा निर्मल आत्म स्वभाव ही आदरणीय है, उसके सिवाय राग का एक अंश या पुद्गल का एक रज कण भी आदर योग्य नहीं है।

दया, पूजा, भक्ति वगैरह के शुभ परिणाम तो विकारी भाव हैं। उनसे पुण्य बंध होता है लेकिन धर्म नहीं होता, न मुक्ति होती है। जिसे राग का रस है, वह राग भले ही भगवान की भक्ति का है या तीर्थ यात्रा का है, वह भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द से रिक्त है, रहित है और मिथ्यादृष्टि है।

मिथ्यात्व ही संसार का मूल है। विपरीत मान्यता ही मिथ्यात्व है, जो वस्तु जैसी है, उसे उसके विपरीत मानना, अपनी झूठी कल्पना करना ही मिथ्यात्व है। परमार्थ स्वरुप देव, गुरु और शास्त्र का, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, आठ मद और शंकादिक आठ दोषों से रहित तथा आठ अंग सहित सत्श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, तथा इसके विपरीत श्रद्धान करना, मिथ्यात्व है। जिसके हृदय में पर द्रव्य के विषय में अणुमात्र भी राग विद्यमान है, पर से अपना भला होना मानता है वह ग्याहर अंग नौ पूर्व का जानकार तथा अट्ठाईस मूल गुणों का निरतिचार पालन करने वाला द्रव्यलिंगी साधु होकर भी अपने आत्मा को नहीं जानता तो वह तीव्र मिथ्यात्वी है। कुदेव-अदेव में देव बुद्धि, कुगुरु-अगुरु में गुरु बुद्धि और कुधर्म-अधर्म में धर्म बुद्धि होना ही मिथ्यात्व है। इसके पांच भेद हैं (१) एकान्त(२) विपरीत (३) संशय (४) विनय (५) कुज्ञान। यह सब जीव को अनन्त संसार परिभ्रमण के कारण हैं। पर को अपना मानना, पर से अपना भला होना मानना, यह तो बड़ी भ्रमना है ही, परन्तु अपनी एक समय की चलने वाली पर्याय में इष्ट, अनिष्टपना मानना भी मिथ्यात्व है। अज्ञानी संसारी जीव मोह के कारण अदेव, कुदेवादि की पूजा, वंदना भक्ति करता है, और संसारी पुत्र, परिवार आदि की कामना पूर्ति चाहता है, पर यह सब तो प्रत्येक जीव के अपने अपने कर्मोदय अनुसार ही सब सुख - दुःख अनुकूलता- प्रतिकूलता मिलती है। पर मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण विवेकहीन लोक मूढ़ता वश अदेवादि की पूजा भक्ति करता है। जिससे अनन्त संसार में रुलता रहता है। ज्ञानी को सच्चे देव, गुरु के

स्वरुप का ज्ञान होता है। **जो वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा होते हैं, वह सच्चे देव हैं, जो निर्ग्रन्थ, वीतरागी मोक्ष मार्गी साधु होते हैं वह सच्चे गुरु होते हैं। इनके बताये हुये मार्ग पर चलना ही इनकी सच्ची पूजा है।** भव भ्रमण का अन्त लाने का मार्ग क्या है ? उसका सच्चा उपाय क्या है ? इसे समझना ही श्रेयस्कर है। यह कोई भी क्रियाकांड मोक्ष मार्ग नहीं है परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन के स्वरुप का निर्णय करके, स्वानुभव करना यह मुक्ति का मार्ग है। अन्तर में जिन स्वरुपी भगवान आत्मा स्वयं वीतराग ब्रह्म स्वरुप मूर्ति है। सभी जीव अन्तर में तो जिन स्वरूप हैं। पर्याय में अंतर है परन्तु स्वभाव में अंतर नहीं है। जो राग से एकता तोड़कर अज्ञान मिथ्यात्व छोड़कर जिन स्वरुप निज भगवान आत्मा को दृष्टि में ले, व अनुभव करे, वह स्वयं परमात्मा हो जाता है, यही सच्ची पूजा है। पर वस्तु तो दूर है। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, पैसा यह भी सब कर्मोदय जन्य संयोग पर हैं। यहां तक कि देव, गुरु, शास्त्र भी दूर रहें, वह भी पर हैं, परन्तु जो त्रिकाली आनन्द मूर्ति चैतन्य प्रभु ध्रुव तत्व पर दृष्टि न देकर एक समय की पर्याय पर दृष्टि रखता है। वह भी कर्म बंध भव भ्रमण का कारण है। फिर पर से अपना हिताहित, भला, बुरा होना मानना तो महान मिथ्यात्व है।

जिसकी जिधर की जैसी रुचि होती है उसी अनुसार मति होती है, उसी अनुसार गति होती है। जिसकी मति, चैतन्य स्वरुप में न होकर राग और पर में होगी उसे मरकर संसार में ही भटकना पड़ेगा।

प्रश्न - इस बात से तो बड़ा विरोध पैदा होता है। संसार में सभी अपनी सम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार पूजा- विधान आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। यदि वह सब मिथ्यात्व है, तो फिर कैसे काम चलेगा ?

समाधान - यह कोई वाद - विवाद का विषय नहीं है। यह तो अपनी अन्तर मान्यता का विषय है। कौन क्या करता है ? इससे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। संसार में तो सभी तरह के जीव हैं और सब कुछ होता है। यहां तो जिसे मुक्त होना है संसार में नहीं रहना है, सत्य वस्तु स्वरुप समझने की भावना है उसके लिये यह बात है। संसार में कौन - क्या करता है ? उसकी वह जाने। यह जैन दर्शन, जिनेन्द्र परमात्मा भगवान महावीर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

यह परमात्म तत्व शुद्ध अध्यात्म की बात अन्यत्र दुर्लभ है। सत्य वस्तु स्वरुप को सुनना, समझना भी बहुत कठिन, बड़ा मुश्किल है। अरे यह ग्रहीत मिथ्यात्व अदेवादिक की पूजा संसार का कारण है ही। यहां तो जो व्रत, तप आदि करके उससे धर्म मानते हैं, वह भी अभी अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि हैं। यह ज्ञान मार्ग तो सूक्ष्म है। यहां तो स्वयं की पर्याय का लक्ष्य करोगे, तो राग व दुःख होगा। यहां तक कि निर्मल पर्याय का भी लक्ष्य व आश्रय करोगे तो विकल्प उठेंगे। भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुव स्वभाव तो पर्याय को छूता ही नहीं है। जब स्वयं की पर्याय से ही सम्बन्ध नहीं है। स्वयं की पर्याय से सम्बन्ध रखना भी राग और बंध का कारण है, तो प्रभु पर की पर्याय जड़ की पर्याय से सम्बन्ध रखना, उसका लक्ष्य रहना, कितना घातक, बाधक होगा?

वस्तु स्वरुप तो यह है कि जीव अपने परिणाम भी अपने चाहे अनुसार नहीं कर सकता, परन्तु जो परिणाम क्रमानुसार होने हैं वही होते हैं। उन्हें चाहे जैसे आगे, पीछे, उल्टे-सुलटे नहीं कर सकते। जगत में सब कुछ व्यवस्थित अपने क्रमानुसार होता है। कहीं कुछ भी फेर - फार नहीं हो सकता, हो ही नहीं सकता। जब जैसा जो कुछ होना है वह वैसा ही होगा, यह वस्तु स्वरुप, स्वतंत्र व्यवस्था है। इसलिये सारभूत बात यह है कि अपना हित करना है, तो सत्य वस्तु स्वरुप को समझकर, अपने ध्रुव स्वभाव पर दृष्टि रखो, और सारा जगत प्रपंच छोड़ो, कौन क्या करता है, इस तरफ दृष्टि नहीं देना, अपनी देखना, अपना सही निर्णय कर अपना मार्ग बनाना है, इसलिए सद्गुरु तारण स्वामी ने बाहर की कोई चर्चा न करते हुये शुद्ध अध्यात्म जैसा जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा-वैसा ही मोक्षमार्ग भव्य जीवों, ज्ञान मार्ग के साधकों के लिये सत्य वस्तु स्वरुप बताया है।

प्रश्न - शुद्ध पूजा क्या है ? और उसका फल क्या है ?

आगे सद्गुरु इसके समाधान में गाथा कहते हैं.....

गाथा (२५)

तेनाह पूज सुद्धं च, सुद्ध तत्व प्रकाशकं।
पण्डितो वन्दना पूजा, मुक्ति गमनं न संशया ॥२५॥

अन्वयार्थ - (तेनाह) इसलिए कहा (पूज सुद्धं) शुद्ध पूजा का स्वरुप (च) और (शुद्ध तत्व) शुद्धात्म तत्व (प्रकाशकं) प्रकाश करना, प्रगट करना

(पण्डितो) पंडितों की (वंदना) स्तुति आराधना (पूजा) पूजा(मुक्ति गमनं) मोक्ष मार्ग प्रदान करने वाली मोक्ष गामी (न संशया) इसमें कोई संशय नहीं है।

विशेषार्थ - इसलिए मैंने शुद्ध पूजा का स्वरूप कहा है कि अपने शुद्धात्म स्वरुप का प्रकाश करना, अपने गुणों को प्रगट करना, स्वयं आत्मा से परमात्मा होना, यही पंडितों की, ज्ञानी जनों की स्तुति आराधना पूजा है जो मोक्ष प्रदान करने वाली है। इसमें कोई संशय नहीं है।

अदेवादि की पूजा जीव को संसार में परिभ्रमण कराने वाली है, इसलिए मैंने (श्री जिन तारण स्वामी) ने शुद्ध पूजा का स्वरूप कहा, यह यथार्थ पूजा अक्षय आनन्द को देने वाली और शुद्ध तत्व की प्रकाशक है। इससे अपना सहजानन्द मयी ध्रुव धाम परमात्म पद प्रगट हो जाता है। ज्ञानी साधु अपने परमात्म स्वरुप की वन्दना करते हैं और निज स्वभाव में लीन होकर निजानन्द मय रहते हैं, यही ज्ञानी की वन्दना पूजा है। इसी शुद्ध पूजा से परमानन्द मयी, अविनाशी पद मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसमें कोई संशय नहीं है जैन आगम में जिनेन्द्र परमात्मा ने जो अपनी पर्याय, पर द्रव्य का स्पर्श नहीं करती, उसकी बात तो एक ओर है, परन्तु जो शान्ति, आनन्द आदि की पर्याय अपने अस्तित्व में हैं, उनमें से भी आनन्दादि की नयी पर्यायें प्रगट होने से उन्हें (उन पर्यायों को) पर द्रव्य कहा है तथा त्रिकाली गुण पिण्ड को स्व द्रव्य कहा है। केवल ज्ञान की पर्याय को भी द्रव्य कहा है तो स्व द्रव्य कौन? अपना त्रिकाली ध्रुव स्वभाव स्व द्रव्य है। जिसका ज्ञान, श्रद्धान, स्मरण, ध्यान करने से परमात्म पद प्रगट होता है। त्रिकाली सहज ज्ञान, त्रिकाली सहज दर्शनात्मक शुद्ध अंतःतत्व स्वरुप, स्व द्रव्य है। उसका आधार कारण समयसार (शुद्धात्मा) है, यह कारण समयसार ही उपादेय है। मोक्ष का कारण समभाव वीतरागता है, और वीतराग स्वभावी भगवान आत्मा है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द से परिपूर्ण स्वभाव है। इस स्वभाव साधन से ही जीव की मुक्ति होती है, अन्य किसी साधन से नहीं होती। सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में वस्तु स्वरुप की ऐसी परिपूर्णता उपदिष्ट हुई है कि प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से पूर्ण परमेश्वर है। चैतन्य तत्व के लक्ष्य से रहित जो कुछ किया, वह सब सत्य से विपरीत हुआ, इसलिये अनादि से संसार परिभ्रमण

चल रहा है। अतः जिन्हें आत्मा में अपूर्व धर्म प्रगट करना हो, मुक्ति चाहना हो, उन्हें अपनी पूर्व में मानी हुई सभी बातों मिथ्या मान्यताओं को अक्षरशः मिथ्या जानकर ज्ञान का सम्पूर्ण बहाव ही बदलना पड़ेगा। कोई भी तत्व को किसी अन्य तत्व के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, ऐसा समझ कर अपने परिपूर्ण आत्मा की श्रद्धा व आश्रय करना व पर का आश्रय छोड़ना ही परमेश्वर होने, मुक्ति का पंथ (तारण पंथ) है। ज्ञान को स्वतंत्र मानने वाला, ज्ञेय को भी स्वतंत्र मानता है। ज्ञेय को स्वतंत्र मानने वाला, ज्ञान को भी स्वतंत्र मानता है। परन्तु स्वयं को पराधीन मानने वाला सबको पराधीन मानता है। जगत में पूर्णता को प्राप्त परमात्मा अनन्त है, किन्तु कोई पर परमात्मा किसी का कुछ नहीं कर सकता। समय - समय की पर्याय स्वतंत्र है, वही जैन दर्शन है। पर अभी जिनके कुदेवादि कि श्रद्धा ही नहीं छूटी, उनको धर्म ध्यान नहीं हो सकता। वे तो गृहीत मिथ्यात्व में फंसे हैं। ऐसे जीवों को यह बात ही नहीं जंचती कि आत्मा स्वयं परमात्मा है, पुण्य पाप रहित है और आत्मा की जो धर्म क्रिया साधना है, वह उनके लक्ष्य में ही नहीं आती, वे तो जड़ की शरीर की क्रिया पूजा आदि में धर्म मानकर अधर्म का ही सेवन करते हैं।

प्रश्न - इस सत्य धर्म को उपलब्ध करने का क्या उपाय है, इसे कैसे प्रगट किया जाये ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं.....

गाथा - (२६)

प्रति इन्द्रं प्रति पूर्णस्य, शुद्धात्मा सुद्ध भावना।
सुद्धार्थं सुद्ध समयं च, प्रति इन्द्रं सुद्ध दिस्टितं ॥२६॥

अन्वयार्थ - (प्रति) प्रत्येक (इन्द्रं) इन्द्रियों और मन को धारण करने वाला प्राणी, जीव, आत्मा (प्रति) अपने आप में (पूर्णस्य) परिपूर्ण है (शुद्धात्मा)शुद्धात्मा है (सुद्ध भावना) ऐसी शुद्ध भावना करे (सुद्धार्थं) अपना इष्ट और शुद्ध प्रयोजनीय (सुद्ध समयं) शुद्धात्म स्वरुप - शुद्ध समयसार (च) और (प्रति) प्रत्येक (इन्द्रं) इन्द्र (उपयोग वाला) जीव(सुद्ध दिस्टितं) शुद्ध दृष्टि है अथवा अपने शुद्धात्म स्वरुप को देखे।

विशेषार्थ - प्रत्येक जीव आत्मा अपने आप में परिपूर्ण है , शुद्धात्मा है, ऐसी शुद्ध भावना करे, और अपना इष्ट, प्रयोजनीय, निज शुद्धात्म स्वरुप, शुद्ध समय सार को देखे, अनुभूति करे, वह प्रत्येक जीव शुद्ध दृष्टि है। यही सत्यधर्म की उपलब्धि और सत्य धर्म को प्रगट करने की विधि है। तथा जिस प्रकार कोई इन्द्र, तीर्थंकर परमात्मा जब वह पैदा होते हैं, तब उनकी विशेष छवि का अवलोकन करता है। उसी प्रकार अपना ध्रुव स्वभाव निज शुद्धात्मा सच्चा देव है, तथा अपना उपयोग ही इन्द्र और प्रतीन्द्र है। यही निज स्वभाव के अनुभव से ज्ञानी होकर अखंड ज्ञानमयी शुद्धात्म - स्वरुप की भावना भाता है, और यही शुद्ध दृष्टि ज्ञानी अपने प्रयोजनीय शुद्धात्मा की अनुभूति करता है। स्वानुभव में ज्ञानी अपने आत्मा को परमात्म स्वरुप देखता है, तथा प्रत्येक आत्मा को भी परमात्म स्वरुप देखता है। यही ज्ञानी की दृष्टि की विशेषता है। सत्य धर्म की उपलब्धि का यही एक मार्ग है।

साधने योग्य निज शुद्धात्म स्वरुप को दर्शित करने के अर्थ, अरिहन्त, सिद्ध, परमेष्ठी दर्पण समान है। अपना तो ''चिदानन्द ज्ञायक स्वरुप है।'' वही साधने योग्य है इसके लिये अरिहन्त सिद्ध परमात्मा प्रमाण हैं, निमित्त है। अरिहन्त का स्वरुप निर्णीत करें तो प्रतीत हो कि '' आत्मा भी चिदानन्द प्रभु है।'' पुन्य पापादि कर्म पर्याय में हैं, व उनका नाश होने पर स्वयं सर्वज्ञ हो सकते हैं। निज स्वभाव रुपी साधन द्वारा ही परमात्मा हुआ जाता है। गृहस्थाश्रम में परमात्म दशा प्राप्त नहीं होती, यहां तत्व निर्णय द्वारा वस्तु स्वरुप को जानकर निज शुद्धात्मानुभूति करना ही इष्ट प्रयोजनीय है, यही सत्य धर्म की उपलब्धि है और इसी की साधना द्वारा अपना दिव्य स्वरूप प्रगट होता है। अरिहन्तादि का स्वरुप वीतराग विज्ञानमय होता है। इसी कारण से अरिहन्तादि स्तुति योग्य महान हुये हैं। अन्तर शुद्धता होना व उसका ज्ञान ही परम इष्ट है, क्योंकि जीव तत्व की अपेक्षा से तो सर्व जीव समान हैं। शक्ति से तो सभी आत्मायें शुद्ध हैं, परन्तु रागादि विकार अथवा ज्ञान की हीनता की अपेक्षा से पर्याय दृष्टि से जीव आत्मा, परमात्मा में भेद कहे गये हैं। जो बहिरात्मा, अन्तरआत्मा, परमात्मा रुप से जाने जाते हैं।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता तो नहीं, परन्तु स्पर्श भी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध होती

है। आत्मा मात्र ज्ञायक, परमानन्द स्वरुप है। यह भगवान सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि का नाद है।

अध्यात्म की ऐसी सूक्ष्म बात इस काल में, जिसे अन्तर में रुचकर परिणमित हो जाये, उस जीव के दो चार भव ही होंगे, अधिक नहीं, यह जिनवाणी कथन है। उपयोग जीव का लक्षण है। उसी के द्वारा लक्ष्य को साधा जाता है। जब तक यह पर लक्षी है, अर्थात् संसार शरीरादि में एकत्व, अपनत्व मान रहा है तब तक अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है, और जब यह उपयोग स्वलक्षी होता है। अपने स्व द्रव्य शुद्धात्म स्वरुप की ओर दृष्टि करता है। तब यही सम्यक्दृष्टि ज्ञानी कहलाता है, और अपने स्वभाव में लीन रहने पर अड़तालीस मिनिट में केवल ज्ञान, अरिहन्त सर्वज्ञ पद प्रगट हो जाता है।

जिसे बाहर का कुछ चाहिए, संसारी, कामना, वासना है, वह भिखारी है। जिसे अपना आत्मा ही चाहिए, वह संत, महात्मा, परमात्मा होता है।

आत्मा अतीन्द्रिय शक्ति का स्वामी है। जिस क्षण जागे,उस क्षण ही वह जाग्रत ज्योति आनन्द स्वरुप, अनुभव गम्य हो जाता है।

जिन्हें सत्य धर्म, निज शुद्धात्म स्वरुप समझने के लिये अन्तर में सच्ची लगन और छटपटी हो, उन्हें अन्तर मार्ग समझ में आये बिना रहे ही नहीं। अवश्य समझ में आता है।

प्रश्न - सत्यधर्म अपने शुद्धात्म स्वरुप को समझ कर फिर क्या करना पड़ता है ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (२७)

दातारो दान सुद्धं च, पूजा आचरन संजुतं।
सुद्ध संमिक्त हृदयं जस्य, अस्थिरं सुद्ध भावना ॥२७॥

अन्वयार्थ - (दातारो) दान देने वाले दातार, (दान सुद्धं) शुद्ध दान-सच्चा दान (च) और (पूजा) पूजा करना (आचरन संजुतं) पूज्य समान आचरण करना , उसमें ही लीन रहना, सच्ची पूजा है (सुद्ध संमिक्त) शुद्ध सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यग्दर्शन (हृदयं जस्य) जिसके हृदय में है अर्थात् अनुभूति युत सच्चा श्रद्धानी सम्यक्त्वी है (अस्थिरं) स्थिर रहना, दृढ़, अटल, स्थित, (सुद्ध भावना) शुद्धात्म स्वरुप की शुद्ध भावना, अथवा परम

पारिणामिक भाव।

विशेषार्थ - जैसे संसार में जो भला आदमी होता है, वह दानादि, पूजा आराधना करता है। वैसे ही जिसने सत्य धर्म अपने शुद्धात्म, स्वरुप को जान लिया है। जिसके हृदय में शुद्ध सम्यक्त्व है। वह दाता शुद्धोपयोग रुप निश्चय शुद्ध दान करता है, तथा अपने शुद्धात्म स्वरुप में लीन रहना, सम्यग्चारित्र ही सच्ची पूजा है। इस प्रकार शुद्ध भावना में लगे रहना, परम पारिणामिक भाव में स्थित रहना ही ज्ञानी का कर्त्तव्य, पुरुषार्थ होता है।

ज्ञानी शुद्धोपयोग सहित निश्चय दान करता है। जिसे अन्तरंग में दाता और दान की शुद्धता उत्पन्न हुई है, तथा जिसके हृदय में शुद्ध सम्यक्त्व है, जो अपने उपयोग को स्वभाव में लगाता है, और निरंतर निज शुद्धात्म स्वरुप की शुद्ध भावना में स्थिर रहता है वही ज्ञानी अशुद्धता का त्याग कर निज - स्वभाव में लीन होकर सच्ची पूजा करता है, अर्थात् अपने परम पारिणामिक भाव में स्थिर रहना ही सच्ची पूजा है।

व्यवहारिक चार दान देना पुण्य बन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-अपनी भूमिकानुसार व्यवहार दान करता हुआ निश्चय दान की विशेषता रखता है। निश्चय से भेद ज्ञान करना ही आहार दान है जिससे आत्मा सबल स्वस्थ होकर आत्मानंद का भोग करता है। तत्व निर्णय करना ही औषधिदान है जिससे आत्मा समता शान्ति में निराकुल रहता है। वस्तु स्वरूप का निर्णय करना ही ज्ञान दान है, जिससे आत्मा ज्ञानानंद में ज्ञायक रहता है। द्रव्य दृष्टि का निरंतर अभ्यास करना अभय दान है जिससे आत्मा अवलबली होकर सहजानंद में रहता है।

जिसने आत्म धर्म को समझ लिया है, उसके जीवन में सहज साधना का क्रम चलता है। जब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, तब तक इसी क्रम से साधना, आराधना करता है। वर्तमान पर्याय पूर्व कर्म बन्धोदय कैसे हैं ? इसका भी ज्ञानियों को विवेक रहता है, तभी समता, शान्ति से सहजानन्द में रहता निर्विकल्प मार्ग पर आगे बढ़ता है।

प्रथम स्वरुप सम्मुख होकर निर्विकल्प अनुभूति होती है, आनन्द का वेदन होता है, तभी यथार्थ सम्यक्दर्शन हुआ कहलाता है इसके बिना यथार्थ प्रतीति नहीं कहलाती।

ज्ञानी को पर द्रव्य की क्रिया करने का विचार तो होता ही नहीं है, तथा उसे अपनी पर्याय में अशुभ भाव को शुभ करने का अभिप्राय भी नहीं रहता। आत्मा ज्ञायक रूप से रहे एक यही अभिप्राय रहता है। साधक दशा में राग होता है, वह निमित्त है, पर को छोड़ूं यह बात तो रहती ही नहीं है। ज्ञान स्वभाव की ओर जो पुरुषार्थ है, उससे शुद्धोपयोग होता है जिससे पूर्व बद्ध कर्म क्षय होते, और पर्याय में शुद्धता आती जाती है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

सिद्ध सम आत्मा का आंशिक अनुभव ही धर्म है। आनंद के प्रभु की निर्विकार शान्ति को धर्म कहते हैं। इसी स्थिति की साधना करना ही सच्चा दान और सच्ची पूजा है। जिससे परमात्म पद प्रगट होता है।

शुद्ध पारिणामिक भाव रुप त्रिकाली सहजानन्द प्रभु का अबलम्बन लेने वाली वह शुद्ध भावना है। त्रिकाली निजानन्द प्रभु तो भाव है और उसके लक्ष्य से उसके अवलम्बन से जो निश्चय मोक्ष मार्ग प्रगट होता है, वह शुद्ध भावना है। ऐसी उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भाव रुप भावना समस्त रागादि से रहित होती है। ज्ञानी सम्यक् दृष्टि ऐसी भावना में स्थित रहता है। आत्मा को जानने वाला, ध्याता पुरुष, धर्मी जीव, जिसको स्व संवेदन आनन्दानुभूति, सहित का एक अंश ज्ञान प्रगट हुआ है, वह सकल निरावरण, अखंड एक शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण निज परमात्म स्वरुप का ध्यान करता है।

स्व पर प्रकाश का पुंज प्रभु तो शुद्ध ही है। पर जो राग से भिन्न होकर उसकी उपासना करे, उसी के लिये वह शुद्ध है।

प्रश्न - यह पूजा आराधना, दानादि के शब्द तो बड़े भ्रम में डालते हैं। इनमें मन उलझता है, क्योंकि इनकी जो व्यवहारिक मान्यता और क्रिया है, वह तो सब विपरीत है। इसके लिये क्या किया जाये, इसका सही अभिप्राय क्या है?

समाधान - व्यवहारी जन को व्यवहारी भाषा ही के द्वारा समझाया जाता है। जो जीव जिस भाषा को जानता है, उसी भाषा में बोला जाये, तभी वह समझता है, अन्यथा नहीं समझता। इसी प्रकार ज्ञान मार्ग, अध्यात्म साधना में उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ज्ञानी शब्दों को नहीं मर्म पकड़ते

हैं। मर्म पकड़ने वाला ही धर्म को उपलब्ध होता है। क्रिया का शुभ अशुभ, पुण्य पाप, कर्म से सम्बंध है। धर्म से क्रिया का कोई सम्बन्ध ही नहीं है,क्योंकि वस्तु स्वभाव तो निष्क्रिय, निरपेक्ष पूर्ण शुद्ध है। वहां शब्द भाषा का प्रयोजन ही नहीं है। शब्दों द्वारा वस्तु स्वरुप बताया जाता है। वस्तु तो अनुभव गम्य है। वर्तमान में जो व्यवहारिक क्रियायें, सामाजिक मान्यतायें चल रही हैं। उन्हीं का सही गूढ़ रहस्य, सच्चा मर्म बताना, संतों का काम है। जो समझे माने उसका भला, जो न समझे, न माने उसका भी भला, उन्हें किसी से कोई राग- द्वेष होता ही नहीं है। **क्योंकि उन्होंने भेदज्ञान, तत्व निर्णय द्वारा वस्तु स्वरुप जाना है। द्रव्य की स्वतंत्रता, त्रिकालवर्ती पर्याय का निर्णय स्वीकार किया है। इससे उन्हें किसी से कोई अपेक्षा, उपेक्षा नहीं है। सहज में वर्तमान पर्याय में जो परिणमन हो रहा है, उसके भी ज्ञायक हैं।**

यह तो अपनी बात है कि अपने को कैसा क्या समझ में आ रहा है। उसे समझकर अपने मार्ग से चलें।

प्रश्न - वंदना, पूजा, आराधना का सच्चा स्वरुप क्या है ?

इसे सद्गुरु आगे गाथा में और स्पष्ट करते हैं .....

गाथा (२८)

सुद्ध दिस्टी च दिस्टंते, सार्धं न्यान मयं धुवं।
सुद्ध तत्वं च आराध्यं, वन्दना पूजा विधीयते ॥२८॥

अन्वयार्थ - (सुद्ध दिस्टी) शुद्ध दृष्टि, जिनका दर्शन उपयोग शुद्ध हो गया (च) और (दिस्टंते) देखते हैं (सार्धं) साधना करते (न्यान मयं) ज्ञान मयी (धुवं) ध्रुव स्वभाव (सुद्ध तत्वं) शुद्धात्म तत्व (च) और (आराध्यं) आराधना करना (वन्दना) वन्दना, नमस्कार (पूजा) पूजा (विधीयते) वास्तविक विधि विधान है।

विशेषार्थ - चिदानन्द मयी शुद्ध चैतन्य के अनुभवी शुद्ध दृष्टि अपने ज्ञान स्वभाव को देखते हैं, और ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की सदैव-साधना करते हैं, और आत्म ध्यान में रत रहते हैं। ज्ञानी अपने उपयोग को शुद्ध तत्व में लगाकर उसी की आराधना करते हैं और सिद्ध स्वरुपी निज शुद्धात्म तत्व की स्तुतियां पढ़ते हैं तथा निज स्वरुप का ही अनुभव करते हैं। यही वंदना,

पूजा की वास्तविक विधि है। साधक जीव को भूमिकानुसार देव, गुरु की महिमा के, श्रुत चिन्तवन के, अणुव्रत, महाव्रत इत्यादि के विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायक परिणति को भार रूप हैं क्योंकि स्वभाव से विरुद्ध हैं, अपूर्ण दशा में वे विकल्प होते हैं। स्वरुप में एकाग्र होने पर निर्विकल्प स्वरुप में ध्रुव स्वभाव में रहने पर वे सब छूट जाते हैं। पूर्ण वीतराग दशा होने पर सर्व प्रकार के राग का क्षय होता है। **शुभ का व्यवहार भी असार है। उसमें रुकने जैसा नहीं है। वह तो पर्याय की पात्रतानुसार सहज अपने आप होता है। साधक को यह शुभादि का व्यवहार भी बीच में आता है। परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।** जिसे विभाव से छूटकर मुक्त दशा प्राप्त करनी हो। वह चैतन्य के अभेद स्वरुप, ज्ञानमयी, ध्रुव स्वभाव को ग्रहण करता है। शुद्ध दृष्टि, सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर एक निरपेक्ष, सामान्य स्वरुप को ग्रहण करती है। शुद्ध दृष्टि के विषय में गुण भेद भी नहीं होते। ऐसी दृष्टि के साथ वर्तता हुआ ज्ञान वस्तु में विद्यमान गुणों तथा पर्यायों को, अभेद को तथा भेद को विविध प्रकार से जानता है। पर शुद्ध दृष्टि किसी में अटकती रुकती नहीं है, वह अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव पर स्थित रहती है। जिससे ज्ञान का स्व पर प्रकाशपना पलटकर शुद्धात्म तत्व की आराधना में लीन हो जाता है। यही शुद्धोपयोग की स्थिति ही वन्दना पूजा की वास्तविक विधि है, इसी से परमात्म पद प्रगट होता है। ज्ञानी शुद्ध तत्व के आलम्बन के बल से ज्ञान में निश्चय व्यवहार की मैत्री पूर्वक आगे बढ़ता है, और चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुतता में समा जाता है। ज्ञानी को बाहर में प्रशस्त, अप्रशस्त राग विषधर काले नाग जैसा जहर, दुःख रूप लगता है। वीतराग दशा में अपूर्व शान्ति आनन्द का वेदन होता है, इसीलिये वह विभाव से बचकर हटकर स्वभाव की साधना करता है। जितना स्वरुप में लीन हुआ,उतनी शान्ति एवं स्वरुपानंद है, जो सच्चे देव गुरु की सच्ची वन्दना, पूजा, भक्ति है। इसी से सच्चा गुरु और सच्चा देव हुआ जाता है। यही अपने इष्ट की प्राप्ति, सही पूजा का विधि - विधान है।

जिसने परम शान्ति, परम आनन्द का स्वाद चख लिया हो, उसे विभाव रुप परिणमन राग की विष्टा नहीं पुसाती, उस तरफ देखना भी नहीं चाहता, जिसे जो कार्य न रुचे, वह कार्य उसे भार रुप लगता है। इसी प्रकार

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है। ऐसे धर्मी जीव को विषय, कषायों की महिमा टूट कर उनकी तुच्छता लगती है। तभी उसका शुद्ध स्वभाव में स्थिरता का पुरुषार्थ काम करता है। सम्यग्दर्शन, शुद्धदृष्टि की लीला बड़ी अपूर्व अद्भुत है। जिसे राग से भिन्नता हुई, स्वरुप से एकता हुई, आनन्द अमृत रस बरसने लगा, वह एक क्षण के निर्विकल्प आनन्द में मगन हो जाता है। आत्मा, अचिन्त्य सामर्थ वाला है, उसमें अनन्त गुण स्वभाव है, उसकी रुचि हुये बिना,उपयोग पर में से पलटकर स्व में नहीं आ सकता। जो पाप भावों की रुचि में पड़े हैं, उनकी तो बात ही क्या ? पर जो पुण्य की रुचि वाले, बाह्य त्याग करें, तप करें द्रव्य लिंग धारण करें, तो भी शुभ की रुचि है, तब तक उपयोग पर से पलट कर स्व में नहीं आ सकता। पर की रुचि मिटे, शुद्ध दृष्टि हो तब, स्व में स्थित हुआ जाता है। मुक्ति मार्ग की यथार्थ विधि का यही क्रम है।

प्रश्न - यह सब सुनने समझने में तो अच्छा लगता है। पर इसके लिये क्या करें ?

इसके समाधान में सद्गुरु आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (२९)

संघस्य चत्रु संघस्य, भावना शुद्धात्मनं।
समय सरनस्य सुद्धस्य,जिन उक्तं सार्धं धुवं ॥२९॥

अन्वयार्थ-(संघस्य) संघ के भव्य जीवों के समूह को संघ कहते हैं (चत्रु)चार (संघस्य) संघ के, चार संघ मुनि आर्यिका श्रावक-श्राविका(भावना)भावना-अन्तर रुचि (शुद्धात्मनं) शुद्धात्म-स्वरुप (समय)आत्मा (सरनस्य) शरण भूत(शुद्धस्य) निज शुद्ध स्वभाव ही है (जिन उक्तं) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है (सार्धं) इसी की श्रद्धा-साधना करो (धुवं) निश्चय ध्रुव स्वभाव इष्ट है।

विशेषार्थ- सद्गुरु तारण स्वामी से उपस्थित जन समूह के भव्य जीवों ने जब यह प्रश्न किया कि गुरुदेव-आपकी बात सुनने समझने में आती है, अच्छी लगती है, वास्तव में यह ज्ञान मार्ग अलौकिक है, और जो पूजा की विधि आप बता रहे हैं यही सत्य है पर हम करें क्या ? श्री गुरू कहते हैं कि श्री संघ के भव्य जीवों। निज शुद्धात्मा की हमेशा विशुद्ध भावना भाओ। मुनि

आर्यिका श्रावक श्राविका चारों संघ के सभी जीव सदैव निज शुद्धात्मा की भावना भाते हैं, क्योंकि शुद्ध स्व समय निज शुद्धात्मा है। एक मात्र शरण भूत है।

जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि यह शुद्ध भावमयी ध्रुव स्वभाव अपनी शाश्वत निधि है। अपने ध्रुव स्वभाव की श्रद्धा और साधना करके ही ज्ञानी साधक-साधु-शिव सुख को प्राप्त करते हैं। इसलिए हे भव्य जीवो ! श्रद्धा पूर्वक निज शुद्धात्म तत्व की साधना करो-यही शरण भूत और ग्रहण करने योग्य इष्ट है।

हे भव्य ! तू भाव श्रुत ज्ञान रुपी अमृत का पान कर। सम्यक्-श्रुत ज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करके निर्विकल्प आनन्द रस का पान कर, जिससे तेरी अनादि-मोह तृषा का दाह मिट जाये। तूने चैतन्य रस के प्याले कभी नहीं पिये। अज्ञान से तूने-मोह-राग द्वेष रुपी विष-के प्याले पिये हैं भाई, अब तो वीतराग जिनेन्द्र देव के वचनामृत प्राप्ति करके अपने आत्मा के चैतन्य रस का पान कर, जिससे तेरी आकुलता मिटकर सिद्ध पद की प्राप्ति हो।

आत्मा को भूलकर बाह्य भावों का अनुभव वह तो विष पान करने जैसा है। भले ही शुभ राग हो, परन्तु उसके स्वाद में कहीं भी अमृत नहीं है, विष ही है। इसलिए उससे भी भिन्न ज्ञानानन्द स्वरुप आत्मा को श्रद्धा में लेकर उसी के स्वानुभव रुपी अमृत का पान कर। अहा-श्री गुरु वत्सलता से चैतन्य के प्रेम रस का प्याला पिलाते हैं। वीतराग की वाणी आत्मा का परम शान्त रस दिखाने वाली है। ऐसे वीतरागी शान्त चैतन्य रस का अनुभव वह भाव शुद्धि है। इसी के व्दारा तीन लोक में सर्वोत्तम परम आनन्द स्वरुप सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

बाह्य क्रिया कांड में लोगों को रुचि हो गई है और अन्तर की यह ज्ञायक वस्तु निज शुद्धात्मा छूट गई है। परमात्मा क्या है? उसका स्वरुप कैसा है? इसका विचार मंथन होना चाहिए, वस्तु स्वरुप को समझे बिना जीवों को सीधा धर्म करना है, प्रतिमा धारण कर लेते हैं, हो सका तो साधु बन जाते हैं। या यह पूजादि-दानादि बाह्य क्रिया में उलझे रहते हैं और इसे धर्म मानते हैं। किन्तु भाई सम्यक्दर्शन के बिना अर्थात् अपने आत्म स्वरुप

को जाने बिना धर्म होता ही नहीं है, फिर प्रतिमा या साधुपना कैसे होगा ? सबसे प्रथम तो सम्यक् दर्शन का उपाय करना चाहिए।

जिनवाणी में मोक्ष मार्ग का कथन दो प्रकार से है, अखंड आत्म स्वभाव के अवलम्बन से सम्यक्दर्शन,ज्ञान, चारित्र रुप मोक्ष मार्ग प्रगट हुआ, वह सच्चा मोक्ष मार्ग है और उस भूमिका में जो महाव्रतादि का राग विकल्प है, वह मोक्ष मार्ग नहीं है किन्तु उसे उपचार से साधन रुप मोक्ष मार्ग कहा है। आत्मा में वीतराग शुद्धि रुप जो निश्चय मोक्ष मार्ग प्रगट हुआ, वह सच्चा अनुपचार शुद्ध उपादान एवं यथार्थ मोक्षमार्ग है, और उस काल वर्तते हुये,मुनि श्रावक आदि के शुभ राग को वह सहचर तथा निमित्त होने से मोक्ष मार्ग कहना वह उपचार है, व्यवहार है।

जैन धर्म की महत्ता यह है कि मोक्ष के कारण भूत सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि शुद्ध भावों की प्राप्ति उसी में होती है,उसी से जैन धर्म की श्रेष्ठता है!

इसलिये हे जीव ! ऐसे शुद्ध भाव व्दारा ही जैन धर्म की महिमा जानकर तू उसे अंगीकार कर और राग को अथवा पुण्य को धर्म मत मान।

भव भ्रमण का अन्त लाने का सच्चा उपाय,पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यक्दर्शनादि के स्वरुप का निर्णय करके स्वानुभव करना वह मार्ग है, अनुभव में विशेष लीनता वह श्रावकपना,और उससे भी विशेष स्वरुप रमणता वह मुनिपना है।

अध्यात्म में सदा निश्चय नय ही मुख्य है। उसी के आश्रय से धर्म होता है। शास्त्रों में जहां विकारी पर्यायों का व्यवहार नय से कथन किया है। वहां भी निश्चय नय को ही मुख्य और व्यवहार नय को गौण करने का आशय है।

अति अल्प काल में जिसे संसार परिभ्रमण से मुक्त होना है, ऐसे अति आसन्न भव्य जीवों को निज परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ उपादेय नहीं है। जिसमें कर्म की कोई अपेक्षा नहीं है, ऐसा जो अपना शुद्ध परमात्म तत्व उसका आश्रय करने से सम्यक् दर्शन होता है और उसी का आश्रय करने से सम्यग्चारित्र होता है, और उसी का आश्रय करने से अल्प काल में मुक्ति होती है। इसलिए मोक्ष के अभिलाषी जीव को अपने शुद्धात्म तत्व का आश्रय

करना योग्य है। इससे भिन्न अन्य कुछ आश्रय करने योग्य नहीं है।

जन्म मरण के क्लेश से छूटना हो, व मोक्ष रुप अविनाशी कल्याण चाहना हो तो अपने ज्ञान स्वरुप आत्मा को ही कल्याण स्वरुप जानकर उसी में संतुष्ट होना, राग में कभी भी संतुष्ट होना योग्य नहीं है। उसमें तो विषयों की इच्छा व आकुलता ही है, राग स्वयं ही आकुलता है, तो उसमें संतोष कैसा ? ज्ञान स्वरुप में ही निराकुलता है, अतः उसके अनुभव में ही संतोष, समता,शान्ति की प्राप्ति होती है।

मुनि धर्म, शुद्धोपयोग रुप है जो आत्मा के भान पूर्वक निज स्वभाव को साधते हैं, व आत्मा में लीन होते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं ! मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका,चारों संघ एक ही शुद्धात्म-स्वरुप की भावना भाने वाले मोक्ष मार्गी होते हैं। राग-पुण्य व व्यवहार रत्नत्रय व्दारा कोई जीव मुक्ति मार्ग का पथिक नहीं होता-क्योंकि ये भाव तो अभव्य को भी होते हैं, इसीलिए केवल व्यवहार में ही मगन रहने वाले जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते।

आत्मा अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। यह मनुष्य भव आत्म कल्याण करने,जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए मिला है, इसमें भी इस मनुष्य भव में इसी भव के लिए मिले, स्त्री,कुटुम्ब आदि- अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री से ही सुख-दुःख की कल्पना कर इसी को सर्वस्व मान बैठ जाना अहित का कारण आत्म घातक है। त्रिकाली ध्रुव स्वभाव को भूल कर अपने को वर्तमान जितना ही मान कर इसी में लगे रहना आत्म हित का कारण नहीं है, पैसा कमाने के भाव तो केवल पाप परिणाम हैं। पैसा से न बाह्य अनुकूलतायें मिलती न धर्म साधना होती। जिनके पाप का उदय होता है उन्हें अन्य कोई सहायता नहीं करता, तथा जिन के पुण्य का उदय होता है, उन्हें सब बाह्य अनुकूलतायें मिल जाती हैं, पर इसमें आत्महित नहीं होता। आत्महित तो सच्चे देव गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलने से ही होता है।

जिनागम में व्यवहार अपेक्षा भी उपदेश है, परन्तु व्यवहार से धर्म लाभ होता है, ऐसा कथन कहीं भी नहीं है। आगम अनुकूल शुभ व्यवहार से पुण्य बंध होता है, जो पाप की अपेक्षा संसारी जीवों को हितकारी है, पर इसे ही धर्म मान लेना मिथ्यात्व है। जैन मत का अनुयायी होने पर भी जिसे यथार्थ वस्तु स्वरुप का पता नहीं है, जो केवल व्यवहार में ही, शुभ राग में ही धर्म

मानता है तथा मात्र कुल परम्परा से अपने को धर्मी मानता है और सत्य का निर्णय नहीं करता वह तो मिथ्या दृष्टि है।

इस काल में बुद्धि अल्प, आयु अल्प व सत्समागम दुर्लभ है। जग में पाप को पाप तो सभी कहते हैं, पर अनुभवी ज्ञानी जन तो पुण्य को भी पाप कहते हैं। भाई ! पदार्थ की स्वतंत्रता की बात जानने के लिए बहुत हिम्मत और पुरुषार्थ चाहिये।

आत्म ज्ञान-आत्म ध्यान के अतिरिक्त अन्य सब कुछ घोर संसार का कारण है। एक ज्ञान स्वरुप-शुद्ध चैतन्य-ध्रुव तत्व भगवान आत्मा को ही ध्येय बनाकर ध्यान करना चाहिए।

अरिहन्त सिद्ध परमात्मा में जैसी सर्वज्ञता, जैसी प्रभुता, जैसा अतीन्द्रिय आनन्द और जैसा आत्म वीर्य है, वैसी ही सर्वज्ञता प्रभुता आनन्द और वीर्यशक्ति-निज आत्मा में भरी है। इसका श्रद्धान, ज्ञान, स्वाभिमान, बहुमान जागे यही धर्म का उत्साह है, जो परमात्मा बनाता है।

प्रश्न-ऐसे शुद्धात्म स्वरुप को जानने समझने उपलब्ध करने का मूल आधार क्या है?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं .....

गाथा (३०)

सार्धं च सप्त तत्वानं, दर्व काया पदार्थकं।
चेतना सुद्ध धुवं निश्चय,उक्तंति केवलं जिनं ॥३०॥

अन्वयार्थ- (सार्धं) श्रद्धान साधना (च) और (सप्त तत्वानं) सात तत्वों का (दर्व) छह द्रव्य (काया) पंचास्तिकाय (पदार्थ कं) नौ पदार्थों में (चेतना) जीव आत्मा (सुद्ध) शुद्ध (धुवं) ध्रुवं अविनाशी, ध्रुव स्वभावी (निश्चय) निश्चय से शाश्वत अटल है (उक्तंति) कहा है, देशना है (केवलं जिनं) केवल ज्ञानी परमात्मा-जिनेन्द्र भगवान।

विशेषार्थ- केवली भगवान, जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि सात तत्व, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ में, एक शुद्ध चैतन्य ध्रुव स्वभाव निज शुद्धात्मा ही श्रद्धान करने योग्य अनुभूति गम्य है, इसका ही भेदज्ञान पूर्वक सत्श्रद्धान करो कि सात तत्व (जीव,अजीव,आश्रव, बन्ध,संवर,निर्जरा,

मोक्ष) में शुद्ध द्रव्य शुद्धात्मा मैं हूं। पंचास्तिकाय (जीव, पुद्गल , धर्म अधर्म, आकाश) में शुद्ध जीवास्तिकाय शुद्धात्मा मैं हूँ। नौ पदार्थ (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) में शुद्ध पद, सिद्ध पद वाला, मैं शुद्धात्मा हूँ , शेष तत्व अजीवादि मेरे से सर्वथा भिन्न हैं।

मैं शुद्ध चैतन्य ध्रुव स्वभावी शुद्धात्मा हूँ, शुद्ध निश्चय नय से ऐसा श्रद्धान करो, यही तत्व को उपलब्ध, परमात्मा होने की विधि है ! यही सम्यक्दर्शन है, जो मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है।

जीव पुण्य,पाप कर्मों के सहयोग से पदार्थ अवस्था में है, पर शुद्ध सिद्ध पद वाला है, नौ पदार्थों में चैतन्य मयी जीव तत्व, स्वयं को ही जानो, जीवादि छह द्रव्यों में अनन्त गुणों का निधान, जीव द्रव्य मैं स्वयं हूँ। ऐसा विशुद्ध शुद्ध द्रव्य दृष्टि से देखो। जीवादिक बहुप्रदेशी, पांच अस्तिकाय में अपनी चेतना समस्त पर पुद्गल आदि से न्यारी है। सात तत्वों में भी सार भूत शुद्ध चैतन्य- मयी ध्रुव स्वभावी मैं हूँ, इस प्रकार सत्ताईस तत्वों में निश्चय से इष्ट और उपादेय निज शुद्धात्म तत्व ही है। इसी शुद्ध सत्स्वरुप की श्रद्धा और साधना करो, श्री जिनेन्द्र परमात्मा की यही देशना है। इसी से परमात्म तत्व की उपलब्धि होती है।

तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं॥

आत्मा का वेदन कैसे हो ? वह कोई निमित्त और राग में प्रेम करने से नहीं होता, जो चेतन की चेतना है, वह ज्ञान, दर्शन, द्वारा ख्याल में आती है। वह पर से तो नहीं बल्कि ज्ञान के सिवाय अन्य गुणों से भी पकड़ में नहीं आती, ऐसे ज्ञान लक्षण व्दारा चेतना जानने से चेतना व्दारा, चेतन सत्ता का निर्णय होता है। जब ज्ञान में चेतना अनुभव में जानने में आई, तभी ऐसा निर्णय हुआ कि यह चेतन सत्ता है। अपने अनुभव द्वारा देखने जानने वाली वस्तु पकड़ में आई, उसी समय निर्विकल्प आनन्द परम सुख का वेदन हुआ, तभी चेतन सत्ता का निर्णय हुआ इसी का नाम सम्यक्दर्शन है।

जगत में जिन्हें आत्मा का भान है ऐसे संत जो गुणवन्त सद्गुरु कहलाते हैं। वह एक ही बात कहते हैं कि आत्मानुभवन करो, मैं आत्मा हूँ इन शरीरादि से भिन्न मैं एक अखंड अविनाशी, चेतन तत्व भगवान आत्मा हूँ यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं हैं। ऐसा भेदज्ञान पूर्वक सत्श्रद्धान

करो, यही एक मात्र मुक्ति का शुद्ध कारण है। दया, दानादि के होने वाले परिणाम आस्रव हैं- धर्म नहीं, ऐसा जानो। जो बाह्य तपश्चर्या करते हैं, अभिग्रह करते हैं, जो केवल क्रिया कांड करते हैं, वे गुणवन्त नहीं हैं। जो आनन्द स्वभाव की खोज करते हैं उसकी साधना करते हैं, वे गुणवन्त सन्त हैं।

आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है, उसकी रुचिकर, और राग तथा व्यवहार की रुचि छोड़ने पर जिस क्षण आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है, वही निश्चय रत्नत्रय है।

इष्टता अनिष्टता ज्ञान में नहीं है। वैसे ही कोई ज्ञेय भी इष्ट अनिष्ट नहीं हैं। यह चित्त के संग रहित, ज्ञान व आनन्द परिणति की बात है। द्रव्यमन के संग पूर्वक दया- दानादि की विषय कषाय की वृत्ति उठना ही बंध का कारण है। आत्मा का संग तो बंध के अभाव का कारण है। मैं ज्ञानानन्द हूँ ऐसे अन्तर स्वभाव के संसर्ग से शुद्धोपयोग होता है। शुद्धोपयोग साधन है व उसका कार्य साध्य- परमात्म तत्व है। दया,दान अथवा भगवान के संग से शुद्धोपयोग नहीं होता।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता तो नहीं,परन्तु स्पर्श भी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमवद्ध होती है। आत्मा मात्र ज्ञायक परमानन्द स्वरुप है, यह भगवान सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि में आया है।

सर्वज्ञ परमात्मा, जिनेन्द्र देव ने जिस आत्मा को ध्रुव कहा है, उसका जो जीव अवलम्बन ले, उसे उस ध्रुव स्वभाव में से शुद्धता प्रगट होती है। उसको ही आत्मा शुद्ध रुप से उल्लसित हुई, ऐसा कहने में आता है। जैसे अनादि अज्ञान वश '' पुण्य पाप भाव रुप मैं हूँ ऐसी मान्यता यही मिथ्यात्व दुःख का अनुभव है।

तीन काल-तीन लोक में शुद्ध निश्चय नय से सच्चिदानन्द आनन्द कन्द भगवान आत्मा मैं हूँ। ऐसा हूँ, ऐसी दृष्टि ही आत्म भावना है। मैं ऐसा हूँ और सब जीव भी भगवन्त स्वरुप हैं। द्रव्य दृष्टि से वस्तु स्वरुप जानना स्व- पर का यथार्थ निर्णय होना, निज शुद्धात्मा का अनुभव होना इसका नाम सम्यग्दर्शन ज्ञान है और उसमें स्थिर होना चारित्र है। इस प्रकार मन वचन

काय, कृत कारित अनुमोदना से निरन्तर यह भावना भाना ही परमात्म स्वरुप की उपलब्धि का मूल आधार है। देह की स्थिति तो मर्यादित है ही, कर्म की स्थिति भी मर्यादित है और विकार की स्थिति भी मर्यादित है। स्वयं की पर्याय में जो कार्य होता है वह भी मर्यादित है। ज्ञान स्वभाव त्रिकाली ध्रुव स्वभाव की मर्यादा नहीं है। धर्मी की दृष्टि उस अमर्यादित स्वभाव पर होती है। निज वस्तु अखंड आनन्द कन्द चैतन्य है, इसका जिसको भान है, वही धर्मी है। वही सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का उपासक है।

सम्यक्दृष्टि तो जीव, अजीव, आश्रव, बंध आदि के स्वांगों को देखने वाले हैं। रागादि आस्रव बंध के परिणाम होते हैं, पर सम्यग्दृष्टि उन स्वांगों के देखने वाले ज्ञाता दृष्टा हैं। कर्ता नहीं है। शुभाशुभ भाव आते हैं पर सम्यग्दृष्टि उन्हें कर्म कृत स्वांग जानकर, उनमें मगन नहीं होते, वे अपने शान्त रस में मगन रहते हैं।

मिथ्यादृष्टि-जीव अजीव के भेद को नहीं जानते, जिससे वे कर्म कृत स्वांगों को ही सत्य (निज रुप) जानकर उनमें मगन हो जाते हैं। रागादि भावों को कर्म कृत होने पर भी अपने भाव जानकर उनमें लीन रहते हैं।

जिनवाणी-ऐसे अज्ञानी जीवों को आत्मा का यथार्थ स्वरुप बतलाकर उनका भ्रम निवारण कर भेदज्ञान कराती है। ज्ञायक, ध्रुव, शुद्ध तत्व,उसका ज्ञानकर,उसकी प्रतीति कर, उसमें रमणकर,यही महान और अपूर्व पुरुषार्थ है।

भगवान की वाणी श्रुत है, शास्त्र है। शास्त्र ज्ञान उपाधि है, पर लक्षी ज्ञान है, तब तक स्व को नहीं जान सकता। निराकुल ज्ञायक ध्रुव तत्व शुद्ध चैतन्य अनुभव करने का प्रबल पुरुषार्थ करना ही इष्ट हितकारी है।

प्रश्न- हम लोग ज्यादा पढ़े लिखे नहीं हैं। तत्व आदि को न याद कर सकते, न विशेष समझ सकते, ऐसे में क्या करें, फिर हमारा क्या होगा?

समाधान - लिखना पढ़ना आता है या नहीं आता, बुद्धि का क्षयोपशम है या नहीं, इससे धर्म का, ज्ञान मार्ग का कोई संबंध नहीं है। मैं ध्रुव स्वभावी शुद्धात्म तत्व जीव आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ। यह समझ में आता है, तो सब समझ में आ गया। यदि अपने स्वरुप का भान नहीं होता, तो बाहर में कितना

ही लिखा पढ़ा हो सब शास्त्र याद हों, तो भी व्यर्थ है- और एक अपना ज्ञायक स्वभाव पकड़ में आ गया तो सब कुछ जान समझ लिया।

अन्य कुछ आये या न आये, लिखना भी न आये, कुछ याद भी न रहे, उससे क्या प्रयोजन है ? बस **''तुष मास भिन्नम्''** अनुभव में आ जाये, वह केवलज्ञानी बनकर मुक्ति पाता है। इस शरीरादि से भिन्न मैं एक अखंड अविनाशी चेतन तत्व भगवान आत्मा हूँ, यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं हैं बस ऐसा अनुभव प्रमाण जानने में आ जाये, निर्णय हो जाये, तो सब कुछ जान लिया,ज्ञानी हो गये।

यदि करोड़ों श्लोक धारणा में लिए परन्तु अन्तर में निज शुद्धात्म स्वरुप अनुभव में नहीं आया,तो वह सारा ज्ञान, सब मन रंजन कराने वाला दुर्गति का पात्र बनाता है। इसलिए किसी विकल्प में न पड़कर मात्र आत्मा को अपने चेतन स्वभाव को जानने का प्रयत्न करना ही तत्व जिज्ञासु होना है और इसी से अपना भला होगा।

प्रश्न - यह बात तो समझ में आती है जब आत्मा की चर्चा सुनते हैं तो बड़ा आनन्द आता है पर अभी पूरी तरह से पकड़ में नहीं आ रही इसके लिए क्या करें ?

इसके समाधान में सदगुरू तारण स्वामी आगे गाथा कहते हैं -

गाथा (३१)

मिथ्या तिक्त त्रितियं च, कुन्यानं त्रिति तिक्तयं।
सुद्ध भाव सुद्ध समयं च, सार्धं भव्य लोकयं ॥३१॥

अन्वयार्थ - (मिथ्या) मिथ्यात्व,मिथ्या मान्यता (तिक्त) छोड़ो त्याग करो (त्रितिय) तीनों प्रकार की (च) और (कुन्यानं) कुज्ञान विपरीत ज्ञान (त्रिति) तीन तरह का (तिक्तयं) छोड़ दो, (सुद्ध भाव) शुद्ध भाव (सुद्ध समयं) शुद्धात्मा (च) और (सार्धं) साधना, श्रद्धा करो (भव्य लोकयं) हे भव्य जीवो।

विशेषार्थ - सद्गुरु तारण-स्वामी कहते हैं, कि हे भव्य जीवो ! तीन मिथ्यात्व-सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व यह तीन मिथ्या मान्यतायें छोड़ दो अर्थात-

(१) यह शरीर ही मैं हूँ !

(२) यह शरीरादि मेरे हैं !

(३) मैं इन सबका कर्ता हूँ !

यह मान्यतायें छोड़ दो, और तीन कुज्ञान-कुमति, कुश्रति, कुअवधि यह भी छोड़ दो, अर्थात् यह झूठा ज्ञान कि-

(१) पर से मेरा भला बुरा या सुख दुःख होता है या मैं किसी का भला बुरा कर सकता हूँ, किसी को सुख दुःख दे सकता हूँ।

(२) किसी कुदेव, अदेवादि देवी देवताओं की मान्यता पूजा भक्ति करने से मेरा भला बुरा होगा।

(३) संसारी व्यवहार दया दानादि से मेरा पर भव सुधर जायेगा मुक्ति होगी- यह लोक मूढ़ता-देव-मूढ़ता-पाखंड मूढ़तायें सब छोड़ दो।

अपनेशुद्ध भाव और शुद्धात्मा की श्रद्धा साधना करो, इसी से आत्मानुभूति-और अपना भला होगा।

केवली भगवान की दिव्य ध्वनि में सम्पूर्ण रहस्य एक साथ प्रगट होता है। श्रोता के समझने की जितनी योग्यता हो, उतना समझ में आता है। भगवान भी किसी को समझा नहीं सकते, बदल नहीं सकते। भगवान स्वयं की पर्याय को एक समय के लिये भीआगे पीछे नहीं कर सकते, टाल फेर नहीं सकते, फिर पर का क्या कर सकते हैं ?

उन्होंने तो वस्तु स्वरूप सत्य धर्म का मार्ग बताया है और स्वयं आत्मा से परमात्मा बने हैं। अपने जैसे संसारी से सिद्ध हुये हैं, इसलिये उनकी वाणी प्रमाण है, तथा वह भी प्रमाण और पूज्य हैं। पर कब ? जब हम उनकी बात मानकर उस मार्ग पर चलें उन जैसे हम भी बनें यही उनकी सच्ची उपासना पूजा भक्ति है।

आत्म स्वभाव को लक्षगत कर उसी में एकाग्र होना ही ज्ञान की महिमा है। नैतिकता, उत्तम कुल, धन सम्पन्नता, निरोग शरीर, दीर्घ आयु ये सभी पाकर भी अन्तर में उत्तम सरल स्वभाव को पाना दुर्लभ है। जिसने अपनेआत्म स्वभाव को पहचान लिया उसका जीवन सार्थक और सफल है।

परिणाम में तीव्र वक्रता हो-महासंक्लिष्ट परिणाम हों, क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता हो, वह तो धर्म की ओर उन्मुख होता ही नहीं है। उसे धर्म

का विचार नहीं आता, जो विषय कषाय का लम्पटी हो, वह तो धर्म पाने योग्य पात्र ही नहीं है। बहुत से जीवों को सरल परिणाम होने पर भी सत् समागम मिलना दुर्लभ है। वीतरागी सर्वज्ञ शासन के तत्व को समझाने वालों का सत्समागम मिलना अति दुर्लभ है। जिसने अपने आत्म स्वरूप को पहचान लिया उसका जीवन सार्थक और सफल है। धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाने वाले ज्ञानी सद्गुरूओंका समागम महाभाग्य से मिलता है। ऐसे शुभ योग को पाकर जिसने सत्य वस्तु स्वरूप को नहीं जाना,अपने शुद्धात्म स्वरूप को नहीं पहचाना, भेदज्ञान द्वारा स्व-पर का यथार्थ निर्णय नहीं किया, तो यह मनुष्य भव लुट जायेगा, क्योंकि संसार में अज्ञानी जनों का समागम कुदेव कुगुरु का संग, पूजा भक्ति द्वारा विपरीत श्रद्धा का पोषणकर मनुष्य यह भव खो देता है।

इस मनुष्य भव और सब शुभ योग को पाकर आत्मा की प्रतीति कर लेना ही योग्य है। अनादि से अज्ञान मिथ्यात्व के वशीभूत अपने को यह शरीर ही मैं हूँ, ऐसा माना है और इस अगृहीत मिथ्यात्व के कारण अनन्त संसार में चार गति, चौरासी लाख योनियों का भव भ्रमण किया है। यह शरीरादि मेरे हैं और मैं इन सबका कर्ता हूँ। यही बंधनऔर दुःखः का कारण है, तथा कुज्ञान में फंसकर इतने बंधन बाँध लिये हैं कि उनसे छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है। धर्म कर्म का यथार्थ निर्णय श्रद्धान विश्वास न होने से, पर से मेरा भला बुरा होता है। सुख दुःख मिलता है या मैं किसी का भला बुरा कर सकता हूँ सुख दुःख दे सकता हूँ यह कुज्ञान रूप बंधन बड़ी दुर्दशा-दुर्गति करता है। मोह राग-द्वेष से बांधता है। वस्तु स्वरूप का विचार करने, कर्म सिद्धान्त को जानने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई किसी का कुछ नहीं करता-सबका अपने-अपने कर्म उदयानुसार ही सुख-दुःख भला बुरा होता है।

काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सबु भ्राता॥

किसी कुदेवादि देवी-देवताओं की मान्यता-पूजा-भक्ति करने से मेरा भला बुरा होगा, यह कुज्ञान रूप मान्यता ही धर्म से विमुख किये संसार में रूला रही है, यह देव-मूढ़ता है। यही धर्म का सबसे बड़ा दुश्मन है। किसी नाम से, किसी रूप की पाषाण आदि धातु की मूर्ति बनाकर उसे भगवान, देवी-देवता मान कर पूजना, उससे संसारी कामना-वासना की पूर्ति चाहना या

अपना भला होना-मानना ही कुज्ञान दुरगति का कारण है।

भगवान सर्वज्ञ के मुखारविन्द से निकली हुई, वीतराग वाणी परम्परा से गणधरों व मुनियों द्वारा प्रवाहित होती आई है। जो जिनवाणी शास्त्र रूप में गुंथित है। इस वीतराग वाणी में कथित तत्वों का स्वरूप जिनके हृदयंगम हुआ, उन भव्य जीवों के भव का अन्त आ जाता है। भगवान की वाणी स्वयं भगवान बनाने वाली है। इसे जो न माने और कुदेवादि की मान्यता-वंदना-पूजा-भक्ति करे तो कैसे भला होगा ?

संसारी व्यवहार दया दानादि से मेरा पर भव सुधर जायेगा, मुक्ति हो जायेगी, यह कुज्ञान रूप-मान्यता-रेत को पेलकर तेल निकालने जैसी है। जो क्रिया-भाव-कर्म बंध के कारण हैं, भले ही वह पुण्य रूप हों पर हैं तो बंध ही, उनसे मुक्ति मानना महान अज्ञान है।

आत्म ज्ञान और आत्म ध्यान के अतिरिक्त अन्य सब कुछ घोर संसार का मूल है। शुभ या अशुभ भाव दया-दानादि शुभ-क्रिया, राग भाव यह सब बंध के कारण दुःख रूप हैं।

एक ज्ञान स्वरूप शुद्ध चैतन्य निज-शुद्धात्मा को ही ध्येय बनाकर ध्यान करने से मुक्ति होती है, अन्य सब संसार का ही कारण है।

मिथ्यात्व और कुज्ञान के अनन्त प्रकार हैं, इन सबको छोड़कर अपने शुद्धात्मा के शुद्ध भाव में लीन होना ही मुक्ति है। आत्म कल्याण का मार्ग है।

बाह्य क्रिया और राग रूप भावों से मुक्ति मानना पाखंड रूप मिथ्यात्व है। इन सबकी अन्तर मान्यता छोड़कर, आत्मा का निर्विकल्प अनुभव करना, मैं एक हूँ-शुद्ध हूँ- ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण अरूपी शुद्धात्मा हूँ ऐसा निश्चय करना ही एक मात्र इष्ट और हितकारी है।

ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा ? निगोद में से निकल कर त्रस पर्याय पाना चिन्तामणि रत्न प्राप्ति के समान दुर्लभ है। उसमें नर भव पाना, जैन धर्म मिलना तो महा दुर्लभ है। धन और कीर्ति मिलना यह कोई दुर्लभ नहीं है। ऐसा उत्तम योग मिला है। यह अधिक समय तक नहीं रहेगा, अतः मिथ्यात्व और कुज्ञान को छोड़कर, अपने शुद्ध स्वभाव को जानकर, उसका अनुभव करने का प्रबल प्रयत्न कर, यही करने योग्य है। जिसके एक समय

के अनुभव के आगे चक्रवर्ती का राज्य और इन्द्र के भोग भी तुच्छ हैं।

व्यवहार रत्नत्रय भी शुभ राग है, निमित्त मात्र है, इस को भिन्न जानकर शुद्धात्मा को उपादेय रूप से निरंतर अंगीकार करना ही द्वादशांग रूप जिनवाणी का सार है।

त्रिकाली चिदानन्द शुद्धात्मा का आलम्बन ही मोक्ष का कारण है। त्रिकाल ध्रुव शक्ति, कारण परमात्मा ही एक मात्र उपादेय है।

जो पराश्रित राग-व-व्यवहार रत्नत्रय को वीतरागी धर्म या मुक्ति का कारण मानते हैं, उन्हें धर्म नहीं वरन्, मिथ्यात्व का आश्रय होता है।

मिथ्यात्व और कुज्ञान का त्याग कर निज स्वभाव की साधना करने में ही, आत्मा की भलाई और मनुष्य भव की सार्थकता है। लोगों का भय त्यागकर, शिथिलता छोड़कर-स्वयं दृढ़ पुरुषार्थ करना यही लोकाग्र में जाने का उपाय है।

''लोग क्या कहेंगे'' ऐसा देखने सोचने से कभी भी अपना आत्महित धर्म साधना नहीं हो सकती। हे भव्य जीवो ! यदि तुम्हें विभाव से छूटकर मुक्त दशा प्राप्त करनी है तो चैतन्य के अभेद शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करो। शुद्ध भाव सहित शुद्ध दृष्टि प्रगट करो।

जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, वह अपने आत्म ज्ञान के बल से शुद्धात्म स्वरूप में लीन होता हुआ परमात्मा बना है। अपने को भी उस परमात्म पद को पाना है, तो उसका एक मात्र उपाय यही है कि यह मिथ्या मान्यता और कुज्ञान को छोड़कर, अपने शुद्ध स्वभाव शुद्धात्मा का निश्चय श्रद्धान ज्ञान कर तद्रूप रहे। यही जिनशासन में मुक्ति का मार्ग, सच्चे देव की सच्ची पूजा का विधि विधान है, जिससे स्वयं आत्मा से परमात्मा देवत्व पद प्रगट होता है।

इस प्रकार ज्ञान मार्ग के साधक जीवों को सच्चे देव, निज शुद्धात्मा की सच्ची पूजा का विधि विधान का स्वरुप बताया, जिसे समझ कर हम भी उस मार्ग पर चलें, मिथ्या मान्यताओं को छोड़कर धर्म के सत्स्वरूप को स्वीकार करें।

सद्गुरु तारण-स्वामी पंडित पूजा ग्रंथ का उपसंहार करते हुए अन्तिम गाथा कहते हैं -

गाथा (३२)

एतत् संमिक्त पूजस्या, पूजा पूज्य समाचरेत्।
मुक्ति श्रियं पथं सुद्धं, विवहार निश्चय सास्वतं॥

अन्वयार्थ - (एतत्) इस प्रकार (संमिक्त पूजस्या) सच्ची पूजा का स्वरूप, शुद्ध पूजा की विधि (पूजा) पूजन-आराधना वंदना स्तुति (पूज्य) पूजा योग्य जिसे हम अपना इष्ट आराध्य देव भगवान मानते हैं (समाचरेत्) उसके समान आचरण करना वैसा ही होना (मुक्ति श्रियं) श्रेष्ठ मुक्ति, मुक्ति श्री (पथं सुद्धं) शुद्ध मार्ग, शुद्ध पंथ (विवहार) व्यवहार नय (निश्चय) निश्चयनय (सास्वतं) है-अनादि निधन है।

विशेषार्थ - इस प्रकार सच्ची पूजा का स्वरूप, पूज्य के समान आचरण ही सच्ची पूजा है, अर्थात् पूजक का पूज्य के समान ही शुद्ध अपना शुद्धात्मा चैतन्य स्वरूप है। ऐसा जानकर निज शुद्धात्मा में लीन होकर, महिमा मयी देवत्व पद सिद्ध पद प्राप्त करना, यही देव पूजा है।

मुक्ति श्री को प्राप्त करने का यही अनेकान्त रूप निश्चय व्यवहार से शाश्वत मुक्ति का मार्ग है। इसी विशुद्ध पथ पर चलने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

सद्गुरु तारण स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार सच्ची पूजा का स्वरूप-पूज्य के समान आचरण ही सच्ची देव पूजा है। जिसका संक्षेप में वर्णन किया कि जो जीव सच्चे देव, गुरू, धर्म के श्रद्धान सहित भेदज्ञान पूर्वक शुद्ध निश्चय से अपने स्वरूप का अनुभूति युत श्रद्धान ज्ञान करते हैं कि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, वे ज्ञानी पंडित हैं।

भगवान जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि मोक्ष का मार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्वरूप है। वह सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भाव रूप मोक्ष मार्ग अन्तर्मुख प्रयत्न द्वारा सधता है। इसमें अन्तर शोधन करना पड़ता है। बाहर तो जो तत समय की योग्यता, पर्याय की पात्रता होती है उस अनुसार परिणमन चलता है।

ज्ञानी पंडित ही देव पूजा करने का अधिकारी होता है, अर्थात जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है, वही सच्ची देव पूजा कर अपने में देवत्व पद प्रगट कर

सकता है। कोई जीव नग्न दिगम्बर मुनि हो गया हो परन्तु पर के साथ एकत्व बुद्धि पड़ी है, पर वस्तु, बाह्य क्रिया से आत्म कल्याण, मुक्ति होगी ऐसा अभिप्राय बना हुआ है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। वह देव पूजा का अधिकारी नहीं, उसे देवत्व पद तीन काल भी मिलने वाला नहीं है।

जो ज्ञानी पंडित है, भले ही वह अव्रती हो पर वह पूजा का अधिकारी है वह ज्ञान में स्नान कर अन्तर शोधन करके सब मल मिथ्यात्वादि का प्रक्षालन कर शुद्ध साधक बन परमात्मा बनेगा।

तत्व विचार के अभ्यास से जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। जिसे तत्व का विचार नहीं है, वह देव गुरु शास्त्र व धर्म की प्रतीति करता है, अनेक शास्त्रों का अभ्यास करता है, व्रत तप आदि करता है तथापि सम्यक्त्व के संमुख नहीं है, सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं है। सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं, जिसे आत्मा के पूर्ण स्वभाव का अन्तर में विश्वास पूर्वक उसका सच्चा श्रद्धान अनुभव सम्यक्दर्शन हुआ हो कि मैं ज्ञान, आनन्दादि अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण शुद्धात्मा हूँ।

जिसे ऐसा श्रद्धान होता है। वह पंडित अपने रत्नत्रय मयी शुद्ध स्वभाव के जल में ज्ञान स्नान करता है। शुद्ध चैतन्य स्वरूप के ध्यान में लीन हो ज्ञान स्नान करता है। तीन लोक में जो ज्ञान का सूर्य निज शुद्धात्मा उसकी अनुभूति के जल में स्नान करता है और इससे सम्पूर्ण शंकादि दोष मिथ्यात्वादि मल से छूटकर पवित्र पूर्ण शुद्ध ज्ञानी हो जाता है, फिर अन्तर शोधन कर, तीन मिथ्यात्व, तीन शल्य, तीन कुज्ञान, रागद्वेषादि अशुभ भावनाओं का प्रक्षालन करता है। चार अनन्तानुबंधी कषाय, पुण्य-पाप, अशुभ दुष्ट कर्म और मन की चंचलता का प्रक्षालन कर अर्थात् ज्ञान पूर्वक सबको धोकर साफ कर फिर, दशधर्म तथा रत्नत्रय के वस्त्राभूषण पहन कर जिन मुद्रा धारण करता है। ज्ञान मयी ध्रुव स्वभाव का मुकुट बांधता है और देव दर्शन के लिए अन्तर गृह चैत्यालय में प्रवेश करता है।

यहाँ भी शुद्ध दृष्टि अर्थात दर्शनोपयोग की शुद्धि हुये बगैर देव दर्शन नहीं होते, तो वह अन्तर चक्षु ज्ञान और दर्शन की शुद्धि करता है अर्थात अचेतन, नाशवान, असत क्षणभंगुर पर द्रव्य की तरफ नहीं देखता। पच्चीस दोषों से रहित शुद्ध दृष्टि का धारी ही सच्चे देव के दर्शन करता है, उसे ही निज

शुद्धात्मा प्रत्यक्ष अनुभव गोचर होती है और जहाँ परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ, वहां फिर कहना ही क्या है! उसी अतीन्द्रिय आनन्द में लीन अमृत रस में निमग्न वन्दना स्तुति भक्ति करता है, जय जय कार मचाता है। साधु पद सातवें गुण स्थान से क्षपक श्रेणी मांडकर जहाँ शुक्ल ध्यान में लीन होता है। अड़तालीस मिनिट (एक मुहुर्त)) में देवता जय जय कार मचाते चले आते हैं।

केवलज्ञानी अरिहन्त परमात्मा की जय.....

यही सच्ची देव पूजा का सच्चा स्वरूप है। इसी मार्ग से अभी तक जितने सिद्ध परमात्मा हुये हैं, हो रहे हैं और होवेंगे, उनका यही सच्चा विधि विधान है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष-ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद भाव नहीं है। प्रत्येक जीव आत्मा स्वतंत्र है बस अपने अज्ञान मिथ्यात्व को हटाकर स्वयं परमात्म पद प्रगट कर सकता है। जो केवल ज्ञान परमात्म पद प्राप्त कराये, वही पूजा सच्ची पूजा है और यह स्व के आश्रय निज शुद्धात्म स्वरूप के अवलम्बन, ज्ञान, ध्यान से सहज में उपलब्ध होती है। पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्म द्रव्य पर दृष्टि करने से उसी के आलम्बन से पूर्णता प्रगट होती है। किसी अदेव, कुदेव, पर परमात्मा के पराश्रय-परावलम्बन से मुक्ति नहीं मिलती।

जिनेन्द्र परमात्मा द्वारा कथित यह मुक्ति का श्रेष्ठ शुद्धमार्ग व्यवहार निश्चय से शाश्वत अनेकान्तमयी है। जो भव्य जीव इसका आराधन करते हैं। वे अवश्य आत्मा से परमात्मा होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है।

इसलिये सब छोड़कर एक शुद्धात्म तत्व की अखंड परम पारिणामिक भाव के प्रति दृष्टि करना, इसी का पुरुषार्थ करना, कि उसी की ओर उपयोग लगा रहे। स्वभाव में से विशेष अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करने के लिए ही साधक सब छोड़ते और मुनिजन जंगल में बसते हैं। तभी उनको निरन्तर परम पारिणामिक भाव, ध्रुव स्वभाव में लीनता वर्तती है। शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। देहातीत जैसी दशा रहती है, उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग की मैत्री पूर्वक रहने वाले हैं। आत्मा का पोषण करके निज स्वभाव भावों को पुष्ट करते हुये विभाव भावों का शोषण करते हैं।

सम्यक्दृष्टि श्रावक, साधक को, मुनि को जो शुभ भाव आते हैं। वे

स्वभाव के विरुद्ध होने से आकुलता दुःख रूप लगते हैं। तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते, जब तक पूर्ण शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान प्रगट न हो तब तक साधक की दशा तीन विशेषताओं वाली होती है।

(१) अपने ध्रुव स्वभाव शुद्धात्म तत्व के प्रति पूरा जोर रहता है। दृढ़ अटल श्रद्धान होता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा रहती है।

(२) शुद्ध पर्यायांश का सुख रूप अतीन्द्रिय आत्मानुभूति रूप वेदन होता है।

(३) अशुद्ध पर्यायांश जिसमें शुभाशुभ, भाव, व्रत,तप, भक्ति आदि का समावेश है, दुःख रूप उपाधि रूप से वेदन होता है।

मुनिराज को शुद्धात्म तत्व के उग्र आलम्बन द्वारा आत्मा में संयम प्रगट होता है, द्रव्य से परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ - कृत - कृत्य हूँ, ऐसा मानते होने पर भी, पर्याय में तो पामर हूँ ऐसा महा मुनि भी जानते हैं।

गणधर देव भी कहते हैं कि हे जिनेन्द्र ! मैं आपके ज्ञान को नहीं पा सकता। आपके एक समय के ज्ञान में समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनंत द्रव्य पर्यायों को जानने वाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान ? चार ज्ञान का धारी भी छदमस्थ है। केवलज्ञानी परमात्मा परमानन्द में सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। इस प्रकार प्रत्येक साधक-द्रव्य अपेक्षा से अपने को भगवान मानता होने पर भी पर्याय अपेक्षा से ज्ञान, दर्शन, आनन्द वीर्य आदि पर्यायों की अपेक्षा से अपनी कमी जानता है और इस कमी को पुजाने, पूरा करने के लिए अपने इष्ट आराध्य निज शुद्धात्म देव की पूजा आराधना उपासना करता है। जिससे परमात्म पद प्रगट होता है।

यही ज्ञान मार्ग की सच्ची पूजा की विधि है। जिसको जिनेन्द्र परमात्मा ने अपनी दिव्य ध्वनि में बताया द्वादशांग वाणी में जैसा वस्तु स्वरूप आया उसी अनुसार मैंने संक्षेप में वर्णन किया जो भव्य जीवों को कल्याणकारी महासुख कारी है।

इस प्रकार ज्ञान मार्ग के पथिक अध्यात्मवादी साधकों का पूजा का विधान भगवान महावीर की शुद्ध आम्नाय, जैन दर्शन, द्रव्य की

स्वतंत्रता का प्रतिपादक वर्णन किया। इसमें किसी से भेदभाव, बैर विरोध नहीं है। सत्य वस्तु स्वरूप को बताना ही संतों का काम है, इसी उद्देश्य से वीतरागी संत श्री गुरु श्री जिन तारण-तरण मंडलाचार्य महाराज ने पंडित पूजा का प्रतिपादन किया। जो भव्य जीव सत्यवस्तु स्वरूप को समझ कर इसका पालन करेंगे वह स्वयं आत्मा से परमात्मा बनेंगे।

आत्म-साधना में मार्ग दर्शक आत्मबल बढ़ाने वाली सद्गुरु की वाणी के प्रति बहुमान पूर्वक अपनी अल्पमति से यह टीका की है। सद्गुरु के अभिप्राय और वस्तु स्वरूप को समझने की भावना से अपनी बुद्धि अनुसार आगम प्रमाण लिखने का प्रयास किया है। फिर भी अल्पज्ञतावश जो भूल-चूक हो, उसे सद्गुरु तथा ज्ञानी जन क्षमा करें।

य परात्मा स एवाहं, योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो, नान्यः कश्चिदितिस्थितिः॥

अर्थ- जो परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य मैं हूँ, वही परमात्मा है, इसलिये मैं ही मेरे द्वारा उपासना किया जाने योग्य हूँ, दूसरा कोई अन्य नहीं। इस प्रकार ही आराध्य-आराधक भाव की व्यवस्था है।

(समाधि शतक-३१)

मणु मिलियउ परमेसरहँ, परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूबाहं, पुज्ज चडावउँ कस्स॥

अर्थ- विकल्प रूप मन, भगवान आत्माराम से मिल गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया तो दोनों ही के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ?

(परमात्म प्रकाश- १/१२३)

श्री पंडित पूजा सार सिद्धान्त -

(१) '' मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ'' ऐसा अनुभूति युत निर्णय होना ही सम्यक्ज्ञान है, जिसे ऐसा निर्णय होता है, वह पंडित ज्ञानी है !

(२) आत्मा जीव है, चेतन स्वरूप है, उपयोग से विशिष्ट है, प्रभु है,कर्त्ता है, भोक्ता है, शरीर के बराबर है, अमूर्त्तिक है किन्तु कर्म से संयुक्त है। इस आप्त वचन से होने वाले ज्ञान को आगम कहते हैं। आगम को जानने वाला पंडित होता है।

(३) पूजा का अर्थ पुजाना, पूर्ति करना। पूजा का अभिप्राय- इष्ट की प्राप्ति करना।

(४) पूजा के दो प्रकार हैं ! द्रव्य पूजा-भाव पूजा। द्रव्य पूजा- अर्थात् आदर पूर्वक खड़े होना, नमस्कार आदि करना-वचन से गुणों का स्मरण करना, तदरूप आचरण करना। भाव पूजा अर्थात्- मन से गुणों का स्मरण करना, तदरूप आचरण करना ''पूजा पूज्य समाचरेत्॥

(५) द्रव्य श्रुत से भाव श्रुत होता है और भाव श्रुत से भेदज्ञान होता है। भेदज्ञान से स्वानुभूति होती है और स्वानुभूति से केवलज्ञान होता है।

(६) अविद्या अर्थात् अज्ञान के अभ्यास से उत्पन्न हुये संस्कारों द्वारा मन पराधीन होकर चंचल-रागी-द्वेषी-बन जाता है। वही मन श्रुत ज्ञान के संस्कारों द्वारा स्वयं ही आत्म-स्वरूप-स्व तत्व में स्थिर हो जाता है।

(७) केवलज्ञान ही मोक्ष का साक्षात कारण है और वह केवलज्ञान स्वानुभूति से ही होता है इसलिये श्रुत की आराधना करना चाहिये।

(८) श्रुत ज्ञान ही केवल एक ऐसा ज्ञान है जो स्वार्थ भी है, परार्थ भी है, शेष चारों ज्ञान स्वार्थ ही हैं, शब्द प्रयोग के बिना दूसरों का संदेह दूर नहीं किया जा सकता।

(९) श्रुत के उपयोग की विधि- बुद्धिशाली मुमुक्षु को गुरु से श्रुत

को ग्रहण करके तथा युक्तियों से परिपक्व करके और उसे स्वात्मा में निश्चल रूप से आरोपित करके अनेकान्तात्मक अर्थात्- द्रव्य रूप और उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक वस्तु का निश्चय करना चाहिए।

(१०) श्रुत ज्ञान का बड़ा महत्व है, उसे केवलज्ञान के तुल्य कहा है। श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही सर्व जीवादि तत्वों के प्रकाशक हैं, दोनों में भेद सिर्फ प्रत्यक्षता और परोक्षता का है।

(११) ज्ञान में स्नान करने वाला ज्ञानी अपने समस्त कर्ममलादि का प्रक्षालन कर देता है।

(१२) मुमुक्षु यदि एक क्षण के लिये भी निर्विकल्प हो जाये, यह क्या है ? कैसा है ? किसका है ? इत्यादि अन्तर्जल्प से सम्पृक्त भावना जाल से रहित हो जाये, तो उसके सारे कर्म बंधन टूट जाते हैं।

(१३) अज्ञानी जीव करोड़ों जन्म में जितना कर्म खपाता है, तीन गुप्तियों का पालक ज्ञानी उसे आधे निमिष मात्र में क्षय कर देता है।

(१४) सम्यक्ज्ञान सूर्य के समान है। जैसे सूर्य के उदय होते ही रात्रि विला जाती है, वैसे ही ज्ञान के उदय होते ही सारे दोष मल मिथ्यात्वादि कर्म विला जाते हैं।

(१५) ध्यान को छोड़कर शेष सभी तपों में स्वाध्याय ही ऐसा तप है, जो उत्कृष्ट शुद्धि में हेतु है।

(१६) सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के सम्पूर्ण होने पर भी सम्यक्चारित्र की पूर्णता न होने पर परम मुक्ति, भगवत सत्ता परमात्म पद नहीं मिल सकता।

(१७) जैसे सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान-अज्ञान होता है , वैसे ही सम्यक्ज्ञान के बिना चारित्र भी चारित्राभास होता है।

(१८) अज्ञान-राग-द्वेष-मोह ही जीव के महान शत्रु हैं।

(१९) समय-आत्मा को, आगम को, प्रसंग को कहते हैं। समय का विवेक और ध्यान रखने वाला ज्ञानी है।

(२०) जो स्व में स्थित है, वह स्वस्थ्य है, वही साधु कहलाता है।

(२१) अध्यात्म तत्व का उपदेश सुने बिना, न अपनी आत्मा का बोध होता है, न श्रद्धान होता है, न पाप विषय कषाय से विरक्ति होती है।

(२२) जो अव्रती है, वह व्रत ग्रहण करके ज्ञानाभ्यास में तत्पर होकर परमात्म बुद्धि से समभाव होकर स्वयं परमात्मा हो जाता है।

(२३) ज्ञेय और ज्ञाता में जैसा सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहा गया है, जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है, तदनुसार प्रतीति होना - सम्यक्दर्शन है और अनुभूतियुत निर्णय होना सम्यक्ज्ञान है।

(२४) बाह्य विषयादि का त्याग द्रव्य त्याग है, और अन्तरवर्त्ती विषयादि सम्बन्धी, विकल्पों का त्याग-भाव त्याग है, दोनों प्रकार से त्याग करने वाले विश्व पूज्य होते हैं।

(२५) आत्मा के द्वारा आत्मा में आत्मा का पर के आकार रूप अवलम्बन से रहित संवेदन को स्व-संवेदन कहते हैं।

(२६) अदेव, अगुरु आदि की मान्यता छोड़कर कर्म से और कर्म के कार्य क्रोधादि भावों से भिन्न, चैतन्य स्वरूप आत्मा को नित्य भाना चाहिए, इसी से नित्य आनन्द मय मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

(२७) संसार भ्रमण का कारण एक मात्र अपने स्वरूप को न जानना है।

(२८) रत्नत्रय की प्राप्ति बड़े ही सौभाग्य से होती है। अतः उसे पाकर सतत् सावधान रहने की जरूरत है, एक क्षण भी प्रमाद हमें उससे दूर कर सकता है और प्रमाद की सम्भावना इसलिये है कि पुराने संस्कारों के भ्रम में पड़ सकते हैं।

(२९) मन के एकाग्र होने से स्व संवेदन के द्वारा आत्मा की अनुभूति होती है, उसी आत्मानुभूति से जीवन मुक्त दशा और अन्त में परम मुक्ति प्राप्त होती है।

(३०) आर्यता, कुलीनता आदि गुणों से युक्त इस उत्तम मनुष्य पर्याय का सार- जिनवाणी की शिक्षा धारण कर, भेदज्ञान तत्वनिर्णय द्वारा वस्तु स्वरूप को जानकर, मुनिपद धारण करना ज्ञान सम्पन्न समाधिस्थ होना है।

(३१) मोक्ष का कारण तो एक मात्र - परम ज्ञान ही है, जो कर्म के करने में स्वामित्व रूप कर्त्तव्य से रहित है, जितनी क्रिया है, वह कर्म बन्ध का कारण है और एक मात्र शुद्ध चैतन्य प्रकाश मोक्ष का कारण है।

(३२) जिनवाणी के स्वाध्याय से चित्त का खेद - सन्ताप- अज्ञान और व्याकुलता दूर होती है, ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान की स्थिरता का नाम ही ध्यान है। आत्मध्यान से मुक्ति होती है। यही निश्चय-व्यवहार शाश्वत मार्ग है।

सम्यक्ज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर -

प्रश्न १.- धर्म का प्रारम्भ कैसे होता है ?

समाधान - धर्म का प्रारम्भ सम्यक्दर्शन से होता है, सात तत्वों का यथार्थ श्रद्धान करके निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा अनुभूति युत श्रद्धान का नाम सम्यक्दर्शन है।

प्रश्न २. - आगम में तो धर्म की परिभाषा - शुभाचरण रूप पुण्य से की गई है ?

समाधान - आगम में अज्ञानी की अपेक्षा पुण्य को धर्म कहा गया है, जिनेन्द्र भगवान की देशना तो - पूजा भक्ति आदि के साथ व्रताचरण करना सब पुण्य है, और पुण्य बंध है। मोह और क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म कहते हैं। जीव की सम्यक्दर्शन - ज्ञान - चारित्र रूप विशुद्धि को धर्म कहते हैं। मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान - मिथ्याचारित्र रूप संक्लेश परिणाम को अधर्म (पुण्य- पाप) कहते हैं।

प्रश्न ३. - निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति, किससे होती है ?

समाधान - अपने सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप के दोषों को दूर करके उन्हें, निर्मल करना, उनमें अपने को सदा एकमेक रूप से वर्तन करना। लाभ, पूजा, ख्याति, आदि की अपेक्षा न करके निस्पृह भाव से उन सम्यक्दर्शनादि को निराकुलतापूर्वक वहन करना, संसार से भयभीत अपनी आत्मा में इन सम्यक्दर्शनादि को पूर्ण करना, यही निश्चय मोक्ष मार्ग है।

प्रश्न ४. - संसार किसे कहते हैं ?

समाधान - जीव के परिणाम निश्चय नय के श्रद्धान से विमुख होकर शरीरादि पर द्रव्यों के साथ एकत्व श्रद्धान रूप होकर जो प्रवृत्ति करते हैं, उसी का नाम संसार है।

प्रश्न ५. - ज्ञानी का स्वरूप क्या है ?

समाधान - जो स्व-पर के यथार्थ निर्णय पूर्वक शुद्धात्म स्वरूप को जानता है, जिसे मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, ऐसा अनुभूति युत निर्णय है, उसे ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानी, निश्चय रत्नत्रय को ही मोक्ष मार्ग मानता है और उस पर ही अपनी पात्रतानुसार चलता है।

प्रश्न ६. - अज्ञानी का स्वरूप क्या है ?

समाधान - जो अपने शुद्धात्म-स्वरूप को नहीं जानता, उसे अज्ञानी कहते हैं। अज्ञानी जीवों को समझाने के लिए आगम में व्यवहार का उपदेश है, किन्तु जो केवल व्यवहार की ही श्रद्धा करके उसी में रहता है, वह अज्ञानी है।

प्रश्न ७ - निश्चय और व्यवहार नय क्या है ?

समाधान - जो अभेद रूप से वस्तु का निश्चय करता है, वह निश्चय नय है, जो भेद रूप से वस्तु का व्यवहार करता है, वह व्यवहार नय है।

प्रश्न ८. - वस्तु स्वरूप क्या है ?

समाधान - वस्तु दो हैं, जीव और पुदगल। वस्तु स्वरूप से सत्, पर रूप-से असत है, इसी तरह द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है, वस्तु न केवल द्रव्य रूप है और न केवल पर्याय रूप है, किन्तु द्रव्य पर्यायात्मक है।

द्रव्य नित्य और पर्याय अनित्य होती है, द्रव्य एक होता है, पर्याय अनेक होती हैं, अतः द्रव्य रूप से अभिन्न और पर्याय रूप से भिन्न, भेदात्मक वस्तु

अनेकान्तात्मक है।

शुद्ध रूप से वस्तु को जानना ही वस्तु स्वरुप की सच्ची समझ है।

प्रश्न ९. - ध्यान करने की विधि क्या है ?

समाधान- इष्ट और अनिष्ट पदार्थों से मोह, राग द्वेष को नष्ट करने से चित्त स्थिर होता है। चित्त के स्थिर होने का नाम ही ध्यान है। चित्त स्थिर करने के लिए इष्ट विषयों से राग और अनिष्ट विषयों से द्वेष हटाना चाहिए। ये राग द्वेष ही ध्यान के समय बाधा डालते हैं और, मन इधर-उधर भटकता है, ध्यान करने से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १०.- काल लब्धि किसे कहते हैं ?

समाधान- जब जीव के संसार परिभ्रमण का काल अर्ध पुदगल परावर्तन प्रमाण शेष रहता है, तब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के योग्य होता है, उसे काल लब्धि कहते हैं। जब पांच लब्धियों का लाभ होता है , तब भव्य पर्याप्तक जीव को सम्यक्दर्शन का लाभ होता है, उसे काल लब्धि कहते हैं।

प्रश्न ११.- राग द्वेष कर्म से पैदा होते हैं या जीव से ?

समाधान- राग द्वेष जीव और कर्म के संयोग से पैदा होते हैं।

जैसे- हल्दी और चूना के मिलाने से लाल रंग बन जाता है।

प्रश्न १२.- परमात्मा कैसे बनते हैं ?

समाधान- जो जीव भेदज्ञान, तत्वाभ्यास द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करके, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की साधना द्वारा साधु पद धारण करके सम्यक् तप करते हैं, ध्यान समाधि लगाते हैं, वे केवलज्ञानी-अरिहन्त परमात्मा बनते हैं।

प्रश्न १३.- मन क्या है ?

समाधान- द्रव्य मन पुदगल की पर्याय है। भाव मन जीव की पर्याय है। जिसमें निरन्तर संकल्प विकल्प होते रहते हैं, ऐसे विचारों के प्रवाह को मन कहते हैं।

प्रश्न १४.- चेतना कितने प्रकार की होती है ?

समाधान- चेतना, तीन प्रकार की होती है, कर्म चेतना, कर्म फल चेतना, और ज्ञान चेतना, ज्ञान के सिवाय अन्य भावों में ऐसा अनुभव करना कि मैं इसका

कर्त्ता हूँ, यह कर्म चेतना है, और ज्ञान के सिवाय अन्य भावों में ऐसा अनुभव करना कि इसका मैं भोगता हूँ, यह कर्म फल चेतना है, अपने ज्ञान भाव में रहना ज्ञान चेतना है।

प्रश्न १५.- भाव मोक्ष और द्रव्य मोक्ष क्या हैं ?

समाधान- आत्मा का जो परिणाम समस्त कर्मों के क्षय का हेतु है, अर्थात् मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, ऐसी अनुभूति भाव मोक्ष है और आत्मा से कर्मों का पृथक होना, द्रव्य मोक्ष है।

प्रश्न १६.- सम्यक्दर्शन प्राप्त करने वाले जीव की पात्रता क्या होती है?

समाधान- चारों ही गति में से किसी भी गति वाला भव्य, संज्ञी, पर्याप्तक, मन्द कषायी, ज्ञानोपयोगयुक्त, जागता हुआ, शुभ लेश्या वाला तथा करण लब्धि से सम्पन्न जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

प्रश्न १७.- शास्त्र स्वाध्याय करने से क्या लाभ होता है ?

समाधान-(१) त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्य, पर्यायों के स्वरूप का ज्ञान होता है।

(२) हित की प्राप्ति और अहित के परिहार का ज्ञान होता है।

(३) मिथ्यात्वादि से होने वाले आश्रव का निरोध रूप भाव संवर होता है।

(४) प्रति समय संसार से नये-नये प्रकार की भीरूता होती है।

(५) व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय में अवस्थिति होती है।

(६) रागादि का निग्रह करने वाले उपायों में भावना होती है।

(७) पर को उपदेश देने की योग्यता प्राप्त होती है।

प्रश्न १८.- परिणामों की विशुद्धि के लिए क्या करना चाहिए ?

समाधान- परिणामों की विशुद्धि के लिए पाप, विषय, कषाय, परिग्रह आदि का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न १९.- ज्ञानी कर्म संयोग के बीच अलिप्त कैसे रहते हैं ?

समाधान- ज्ञानी पुरुष अपने स्व रस से अर्थात् स्वभाव से ही, सम्पूर्ण राग रस से दूर रहने के स्वभाव वाला है। इससे कर्म के बीच पड़ा हुआ है। तो भी वह ज्ञानी सम्पूर्ण कर्मों से लिप्त नहीं होता।

प्रश्न २०.- ज्ञानी की विशेषता क्या है ?

समाधान- (१) मेरा कुछ नहीं है (२) मुझे कुछ नहीं चाहिए (३) मुझे अपने लिये कुछ नहीं करना है। ऐसी उसकी सतत् जागरूक अन्तर धारणा होती है।

प्रश्न २१.- वास्तविक ज्ञान क्या है ?

समाधान- सम्पूर्ण नाशवन्त पदार्थों से विमुख होकर एक सच्चिदानन्द घन परमात्मा में अभिन्न भावों से स्थित होना ही वास्तविक ज्ञान है।

प्रश्न २२.- ज्ञान मार्ग में बढ़ने में पहली बाधा क्या है ?

समाधान- जो पढ़ते हैं, सुनते हैं, विचार करते हैं, तथा ठीक समझते हैं, उस पर भी दृढ़ता से स्थिर नहीं रहना, उस बात को विशेष महत्व नहीं देना ही पहली बाधा है।

प्रश्न २३.- साधक की प्रारम्भिक अवस्था में बाधक कारण क्या है ?

समाधान- स्वयं की आसक्ति, दुर्बलता, भोगासक्ति, आलस्य, प्रमाद और शरीर, इन्द्रिय आदि में सुख बुद्धि होना।

प्रश्न २४.- मुक्त होने के लिये क्या किया जाये ?

समाधान- एक ही मार्ग है- तत्व ज्ञान की प्राप्ति करना, और इसके लिए सांसारिक संग्रह में भोगबुद्धि, सुख बुद्धि और रस बुद्धि नहीं करना, तथा निषिद्ध आचरण-पाप, अन्याय, झूठ, कपट आदि का हृदय से त्यागकर देना। यही निश्चय-व्यवहार से शाश्वत मार्ग है।

जय तारण तरण

देव (परमात्मा) - तारणतरण

गुरु - तारणतरण

धर्म - तारणतरण

आत्मा - तारणतरण

जयतारण तरण